समयसार दृष्टान्त वैभव

श्रीमत् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा प्रणीत समयसार शास्त्र
तथा श्रीमद् अमृतचंद्राचार्य द्वारा कृत आत्मख्याति टीका में समागत

समयसार दृष्टान्त वैभव

तथा
वैराग्य को वृद्धिगत करने वाली व मुनिदशा की भावना जागृत करने वाली अपूर्व

बारह भावना

Exhibit

GURU KAHAN ART MUSEUM
www.gurukahanmuseum.org

Sponsor

Shree
Kundkund - Kahan
Parmarthik Trust
Mumbai

Organiser

PAINTERNET
ART EXCHANGE
www.painternet.com

First Published 2019
By Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust

All rights reserved only with:
Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust
302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg,
Vile Parle (West), Mumbai - 400056.INDIA.
Tel. No.: +91 22 2613 0820
Telefax: +91 22 2610 4912
Email: info@vitragvani.com
Web: www.vitragvani.com

No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form or by means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the publishers.

Conceptualized by **Nikhil Mehta & Rahul Jain**
Design and printed by **7thSense**
Photography by **Mr. Vipul Patel**
Edited and visualized by **Rahul Jain**

ISBN No.: 978-93-81057-50-6
Price: INR 200/- & US $5

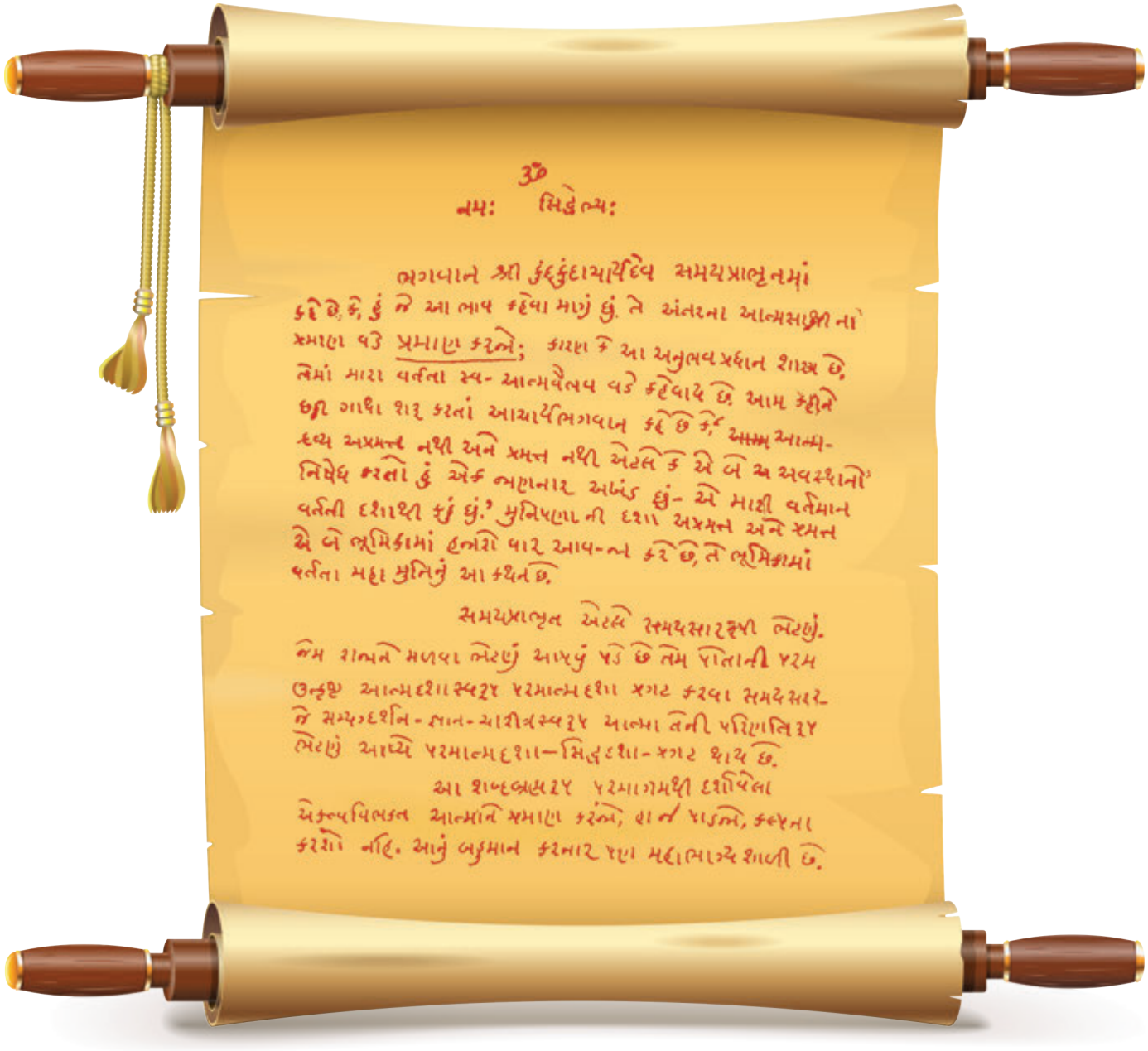

ॐ नमः सिद्धेभ्य :

भगवान श्री कुंदकुंद आचार्यदेव समयप्राभृत में कहते हैं कि, मैं जो यह भाव कहना चाहता हूँ, वह अन्तर के आत्मसाक्षी के प्रमाण द्वारा प्रमाण करना क्योंकि यह अनुभवप्रधान ग्रंथ है, उसमें मेरे वर्तते स्व-आत्मवैभव द्वारा कहा जा रहा है। ऐसा कहकर गाथा ६ प्रारंभ करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि, "आत्मद्रव्य अप्रमत्त भी नहीं और प्रमत्त भी नहीं है अर्थात् कि उन दो अवस्थाओं का निषेध करता मैं एक जाननहार अखंड हूँ - यह मेरी वर्तमान वर्तती दशा से कह रहा हूँ।" मुनित्वरुप दशा अप्रमत्त व प्रमत्त इन दो ही भूमिका में हजारों बार आती-जाती है, उस भूमिका में वर्तते महामुनि का यह कथन है।

समयप्राभृत अर्थात् समयसाररुपी उपहार। जैसे राजा को मिलने के लिए उपहार लेकर जाना होता है। उस भांति अपनी परम उत्कृष्ट आत्मदशारुप परमात्मदशा प्रगट करने के लिए समयसार जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरुप आत्मा, उसकी परिणतिरुप उपहार देने पर परमात्मदशा- सिद्धदशा प्रगट होती है।

यह शब्दब्रह्मरुप परमागम से दर्शित एकत्वविभक्त आत्मा को प्रमाण करना। "हाँ" से ही स्वीकृत करना, कल्पना नहीं करना; इसका बहुमान करने वाला भी महाभाग्यशाली है।

सद्‌गुरुदेवश्री के हृदयोद्‌गार -स्व हस्ताक्षर में (भाषान्तर)

समयसार रहस्योद्घाटक अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

'समयसार दृष्टांत वैभव' व 'बारह भावना'

: प्रकाशकीय :

मङ्गलं भगवान वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी ।

मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैन धर्मोस्तु मङ्गलं ।।

इस भरतक्षेत्र की पुण्यभूमि में जगत्पूज्य परमभट्टारक १००८ भगवान श्री महावीरस्वामी मोक्षमार्ग का प्रकाश करने के लिए समस्त पदार्थों का स्वरूप अपनी सातिशय दिव्यध्वनि द्वारा प्रकट करते थे; उनके निर्वाण के पश्चात प्रवर्तित ज्ञान आचार्यों की परम्परा से भगवद् कुन्दकुन्द आचार्यदेव को प्राप्त हुआ जिस ज्ञान के द्वारा उन्होंने पञ्चास्तिकायसंग्रह, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, अष्टपाहुड़ आदि शास्त्रों की रचना की।

भगवद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव के शास्त्र साक्षात् गणधरदेव के वचनों के समान ही प्रमाणभूत माने जाते हैं। उनके पश्चात हुए ग्रंथकार आचार्य अपने किसी भी कथन को सिद्ध करने के लिए कुन्दकुन्दाचार्यदेव के शास्त्रों का प्रमाण देते हैं। वास्तव में भगवद् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने अपने परमागमों में तीर्थंकर देवो द्वारा प्ररूपित उत्तमोत्तम सिद्धांतों को सुरक्षित रखा है और मोक्षमार्ग को बनाये रखा है।

श्री समयसार अलौकिक शास्त्र है, आचार्य भगवान ने इस जगत के जीवों पर परम करूणा करके यह शास्त्र रचा है, इसमें मोक्षमार्ग का यथार्थ स्वरूप जैसा है, वैसा कहा गया है। अनंत काल से परिभ्रमण करते जीवों को जो कुछ समझना बाकी रह गया, वह इन परमागम में समझाया है। इस शास्त्र की महत्ता देखकर उल्लास आ जाने से श्री जयसेन आचार्यवर कहते हैं कि **"जयवन्त वर्तो वे पद्मनन्दी आचार्य अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य कि जिन्होने महान तत्त्व से भरपूर प्राभृतरूपी पर्वत, बुद्धिरूपी सिर पर उठाकर भव्य जीवों को समर्पित किया है"।** जैसे इस शास्त्र के मूलकर्त्ता अलौकिक पुरूष है, वैसे इसके टीकाकार श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव भी महासमर्थ आचार्य है। आत्मख्याति जैसी टीका अभी तक दूसरे किसी भी जैन ग्रंथ की लिखी नहीं गयी है। इस टीका में आये हुए काव्य अर्थात् कलश अध्यात्मरस से और आत्मानुभव की मस्ती से भरपूर हैं। विधि के किसी धन्य पल में श्री समयसार नाम का महान ग्रन्थ पूज्य सद्गुरूदेवश्री कानजीस्वामी के हस्तकमल में आया, समयसार पढ़ते ही उनके हर्ष का पार नहीं रहा, जिसकी शोध में वे थे, वह उन्हें मिल गया। पूज्य गुरूदेव जैसे-जैसे समयसार में गहरे उतरते गये, वैसे-वैसे उसमें केवलज्ञानी पिता से उत्तराधिकार में आये हुए अद्भुत निधान, उनके सुपुत्र भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने सूक्ष्मता से सम्हालकर रखे हुए दृष्टिगोचर हुए।

भगवद् कुन्दकुन्दाचार्चदेव और श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव इन उभय आचार्यों ने श्री समयसार शास्त्र तथा उसकी टीका में सांसारिक भव्य जीवों को परिचित, अनुभूत, सहज और सरल दृष्टांतो के द्वारा अध्यात्म अमृत का सिंचन किया है। उन्हीं उत्तम दृष्टांतों और सिद्धांतों के साथ-साथ वैराग्य को वृद्धिगत करनेवाली व मुनिदशा की भावना जागृत करनेवाली अपूर्व बारह भावनाओं को चित्रात्मक शैली से इस पुस्तिका में संकलित किया गया है। जो अध्यात्म रसिकजनों को इस गूढ विषय को आत्मसात् करने में अवश्य लाभदायी होगा।

इस पुस्तक में उद्धृत 'समयसार दृष्टांत वैभव' व 'बारह भावना' के चित्रों के चित्रांकन का जो अद्भूत तथा अकल्पनीय कार्य चित्रकार ऋषिकेश देशमाने द्वारा किया गया है उसके लिये संस्था उनकी आभारी है तथा जैन सिद्धांतों को चित्रों के माध्यम से समझाने के कार्य में कार्यरत **गुरू कहान कला संग्रहालय** की पूरी टीम को धन्यवाद ज्ञापित करती है। सभी जीव इन चित्रों को देखकर, उनके भावों को समझकर स्वस्वरूप को समझें इसी पवित्र भावना के साथ.

— श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुंबई

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव द्वारा प्रणीत समयसार शास्त्र
तथा श्रीमद् अमृतचंद्राचार्य द्वारा कृत आत्मख्याति टीका में समागत

समयसार दृष्टान्त वैभव

महासमर्थ योगीश्वर कलिकाल सर्वज्ञ श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव

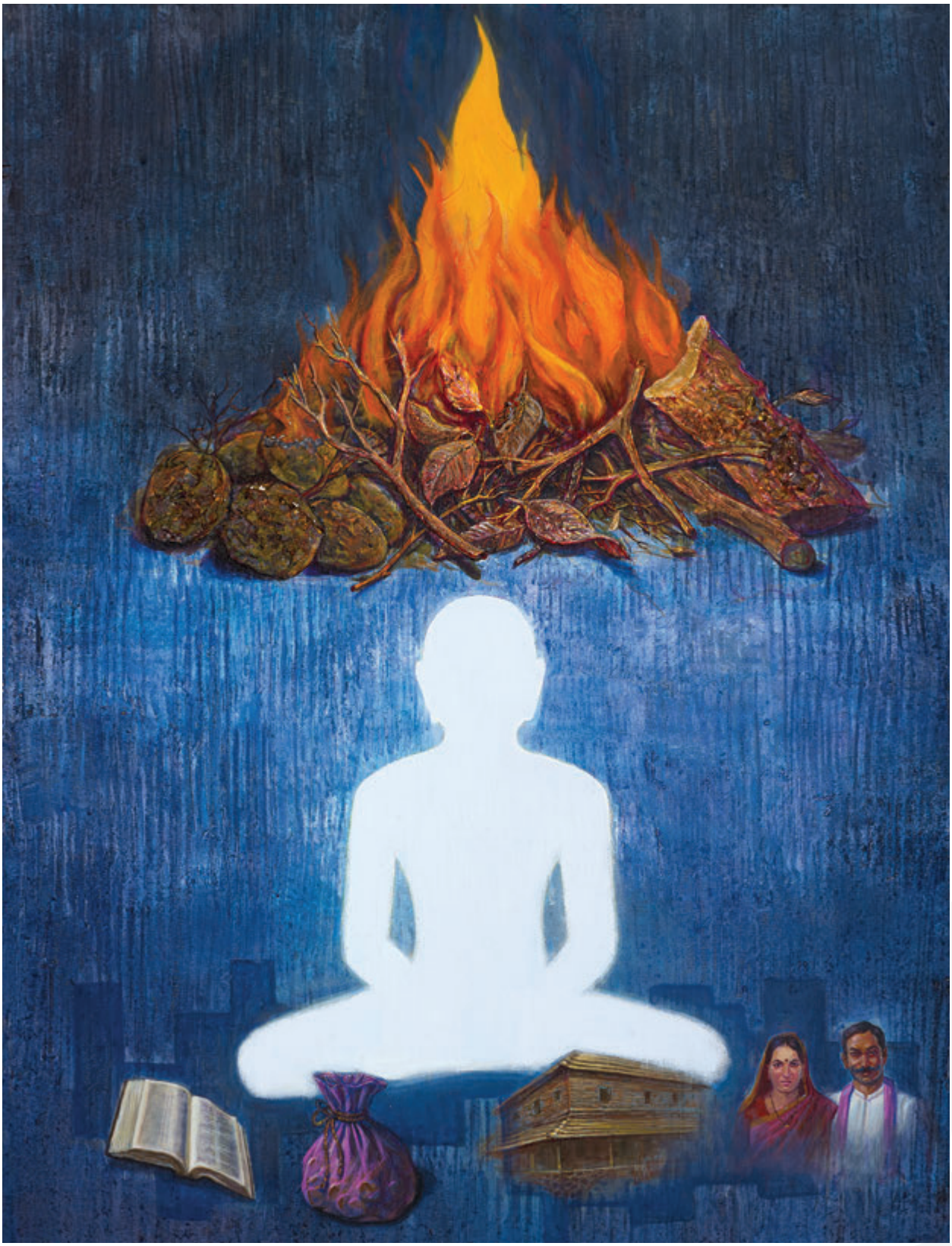

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे दाह्य (जलने योग्य पदार्थ) के आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं, तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती।
उसीप्रकार ज्ञेयाकार होने से उस “भाव” के ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है ।

(गाथा ६, टीका)

42” x 42” | Oil on Canvas

जैसे दीपक घट-पटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है और अपने को-अपनी ज्योतिरुप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है, अन्य कुछ नहीं।

उसीप्रकार ज्ञायक भी समझना चाहिए।

(गाथा ६, टीका)

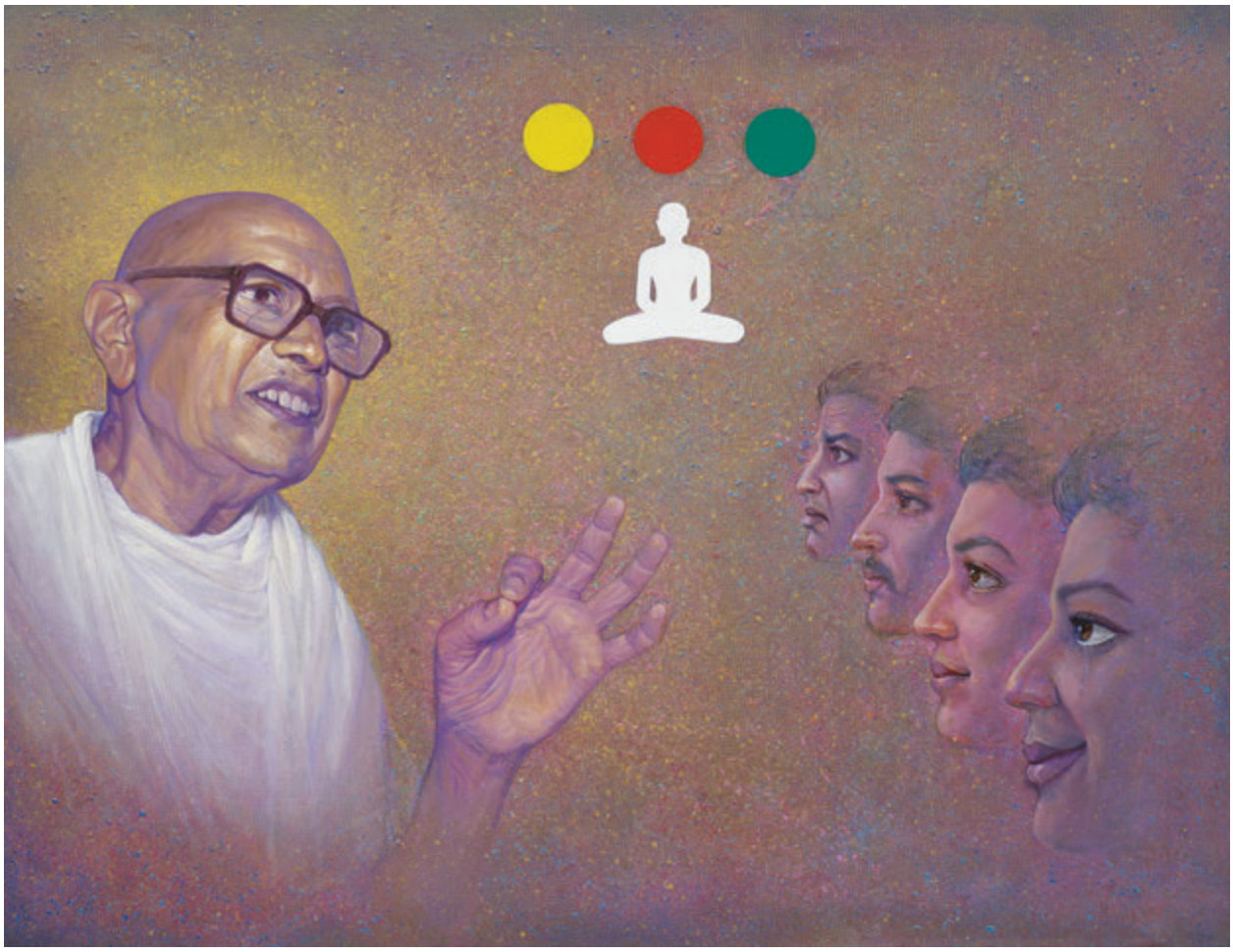

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे किसी म्लेच्छ से यदि कोई ब्राह्मण “स्वस्ति” ऐसा शब्द कहे तो वह म्लेच्छ उस शब्द के वाच्य-वाचक सम्बन्ध को न जानने से कुछ भी न समझकर उस ब्राह्मण की ओर मेंढे की भांति आँखे फाडकर टकटकी लगाकर देखता ही रहता है, किन्तु जब ब्राह्मण की और म्लेच्छ की भाषा का–दोनों का अर्थ जानने वाला कोई दूसरा पुरुष या वही ब्राह्मण म्लेच्छ भाषा बोलकर उसे समझाता है कि “स्वस्ति” शब्द का अर्थ यह है कि “तेरा अविनाशी कल्याण हो”; तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले अत्यन्त आनंदमय अश्रुओं से जिसके नेत्र भर जाते हैं –ऐसा वह म्लेच्छ इस “स्वस्ति” शब्द के अर्थ को समझ जाता है।

इसीप्रकार व्यवहारीजन भी “आत्मा” शब्द के कहने पर “आत्मा” शब्द के अर्थ का ज्ञान न होने से कुछ भी न समझकर मेंढे की भांति आँखे फाड़कर टकटकी लगाकर देखते रहते हैं, किन्तु जब व्यवहार-परमार्थ मार्ग पर सम्यग्ज्ञानरुपी महारथ को चलानेवाले सारथी की भांति अन्य कोई आचार्य अथवा “आत्मा” शब्द को कहने वाला स्वयं ही व्यवहार-मार्ग में रहता हुआ आत्मा शब्द का यह अर्थ बतलाता है कि “दर्शन, ज्ञान, चारित्र को जो सदा प्राप्त हो, वह आत्मा है”; तब तत्काल ही उत्पन्न होनेवाले अत्यंत आनंद से जिसके हृदय में सुन्दर बोध-तरंगे (ज्ञान-तरंगे) उछलने लगती हैं - ऐसा वह व्यवहारीजन उस “आत्मा” शब्द के अर्थ को अच्छी तरह समझ लेता है।

(गाथा ८ टीका)

48" x 36" | Oil on Canvas

जैसे प्रबल कीचड़ के मिलने से जिसका सहज एक निर्मल भाव तिरोभूत (आच्छादित) हो गया है, ऐसे जल का अनुभव करने वाले पुरुष -जल और कीचड का विवेक न करने वाले (दोनों के भेद को न समझने वाले) बहुत से तो उस जल को मलिन ही अनुभवते हैं, किन्तु कितने ही अपने हाथ से डाले हुए कतकफल (निर्मली - एक औषधी) के पड़ने मात्र से उत्पन्न जल-कादव की विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक निर्मल भावपने से उस जल को निर्मल ही अनुभव करते हैं।

इसीप्रकार प्रबल कर्मों के मिलने से जिसका सहज एक ज्ञायकभाव तिरोभूत हो गया है, ऐसे आत्मा का अनुभव करने वाले पुरुष, आत्मा और कर्म का विवेक (भेद) न करने वाले, व्यवहार से विमोहित हृदयवाले तो, उसे (आत्मा को) जिसमें भावों की विश्वरुपता (अनेकरुपता) प्रगट है - ऐसा अनुभव करते हैं, किन्तु भूतार्थदर्शी (शुद्धनय को देखनेवाले) अपनी बुद्धि से डाले हुए शुद्धनय के अनुसार बोध होने मात्र से उत्पन्न आत्म-कर्म की विवेकता से, अपने पुरुषार्थ द्वारा आविर्भूत किये गये सहज एक ज्ञायकभावत्व के कारण उसे (आत्मा को) जिसमें एक ज्ञायकभाव प्रकाशमान है -ऐसा अनुभव करते हैं।

(गाथा ११ टीका)

36” x 48” | Oil on Canvas

लोक में सोने के सोलह वान (ताव) प्रसिद्ध हैं। पंद्रहवें वान तक उसमें चूरी आदि पर-संयोग की कालिमा रहती है, इसलिए तब तक वह अशुद्ध कहलाता है और ताव देते-देते जब अन्तिम ताव से उतरता है, तब वह सोलह-वान या सौटंची शुद्ध सोना कहलाता है। जिन्हें सोलह-वान वाले सोने का ज्ञान, श्रद्धान तथा प्राप्ति हुई है, उन्हें पंद्रह-वान तक का सोना कोई प्रयोजनवान नहीं होता, और जिन्हें सोलह-वान वाले शुद्ध सोने की प्राप्ति नहीं हुई है, उन्हें तब तक पंद्रह-वान तक का सोना भी प्रयोजनवान है।

इसीप्रकार यह जीव नामक पदार्थ है, जो कि पुद्गल के संयोग से अशुद्ध अनेकरुप हो रहा है। उसका समस्त परद्रव्यों से भिन्न, एक ज्ञायकत्व मात्र का-ज्ञान, श्रद्धान तथा आचरणरुप प्राप्ति -यह तीनों जिन्हें हो गये हैं, उन्हें पुद्गल संयोग-जनित अनेकरुपता को कहने वाला अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान (किसी मतलब का) नहीं हैं; किन्तु जहाँ तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हुई; वहाँ तक जितना अशुद्धनय का कथन है, उतना यथापदवी प्रयोजनवान है।

(गाथा १२ भावार्थ)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे कमलिनी-पत्र जल में डूबा हो तो उसका जल से स्पर्शित होने रुप अवस्था से अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना भूतार्थ है - सत्यार्थ है; तथापि जल से किंचित् मात्र भी न स्पर्शित होने योग्य कमलिनी-पत्र के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर जल से स्पर्शित होना अभूतार्थ है - असत्यार्थ है।

इसीप्रकार अनादिकाल से बँधे हुए आत्मा का, पुदगल कर्मों से बंधने-स्पर्शित होने रुप अवस्था से अनुभव करने पर बद्ध-स्पृष्टता भूतार्थ है - सत्यार्थ है, तथापि पुद्गल से किंचित् मात्र भी स्पर्शित न होने योग्य आत्म-स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर बद्ध-स्पृष्टता अभूतार्थ है - असत्यार्थ है।

(गाथा १४ टीका)

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे मिट्टी का ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादी पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व भूतार्थ है - सत्यार्थ है, तथापि सर्वतः अस्खलित (सर्व पर्याय भेदों से किंचित् मात्र भी भेदरुप न होनेवाले ऐसे) एक मिट्टी के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है - असत्यार्थ है।

इसी प्रकार आत्मा का नारक-आदि पर्यायों से अनुभव करने पर (पर्यायों के अन्य-अन्य रुप से) अन्यत्व भूतार्थ है - सत्यार्थ है, तथापि सर्वतः अस्खलित (सर्व पर्याय भेदों से किंचित मात्र भेदरुप न होनेवाले) एक चैतन्याकार आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है -असत्यार्थ है।

(गाथा १४ टीका)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे समुद्र का वृद्धि-हानिरुप अवस्था से अनुभव करने पर अनियतता (अनिश्चितता) भूतार्थ है – सत्यार्थ है; तथापि नित्य-स्थिर समुद्र-स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है – असत्यार्थ है।

इसीप्रकार आत्मा का, वृद्धि-हानिरुप पर्याय भेदों से अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ है – सत्यार्थ है; तथापि नित्य-स्थिर (निश्चल) आत्म-स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है – असत्यार्थ है।

(गाथा १४ टीका)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे सोने का चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुणरुप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है – सत्यार्थ है; तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं, ऐसे सुवर्ण-स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है – असत्यार्थ है।

इसीप्रकार आत्मा का ज्ञान, दर्शन आदि गुणरुप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है – सत्यार्थ है; तथापि जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं, ऐसे आत्म-स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है – असत्यार्थ है।

(गाथा १४ टीका)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे जल का, अग्नि जिसका निमित्त है – ऐसी उष्णता के साथ संयुक्ततारूप – तप्ततारूप – अवस्था से अनुभव करने पर (जल की)उष्णतारूप संयुक्तता भूतार्थ है – सत्यार्थ है; तथापि एकान्त शीतलता रूप जल-स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (उष्णता के साथ)संयुक्तता अभूतार्थ है – असत्यार्थ है।

इसीप्रकार आत्मा का, कर्म जिसका निमित्त है –ऐसे मोह के साथ संयुक्ततारूप अवस्था से अनुभव करने पर संयुक्तता भूतार्थ है – सत्यार्थ है; तथापि जो स्वयं एकान्त बोधरुप (ज्ञानरूप) है, ऐसे जीव-स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता अभूतार्थ है – असत्यार्थ है।

(गाथा १४ टीका)

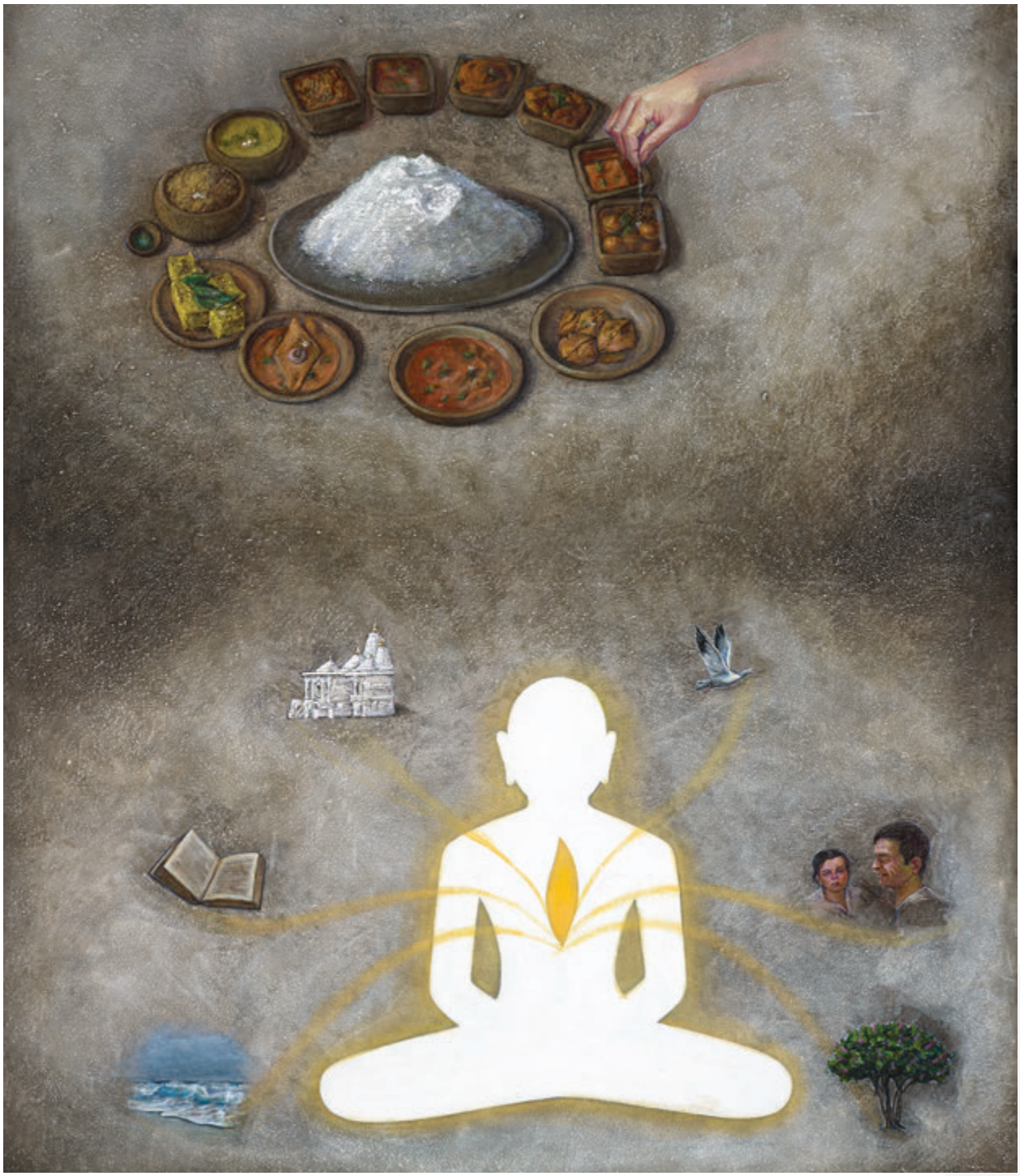

48" x 36" | Oil on Canvas

जैसे-अनेक प्रकार के शाकादि भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव और विशेष लवण के आर्विभाव से अनुभव में आनेवाला जो लवण है, उसका स्वाद अज्ञानी, शाक-लोलुप मनुष्यों को आता है; किन्तु अन्य की सम्बन्ध रहितता से उत्पन्न सामान्य के आर्विभाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला जो एकाकार अभेदरूप लवण है उसका स्वाद नहीं आता और परमार्थ से देखा जाये तो विशेष के आर्विभाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण ही सामान्य के आर्विभाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण है।

इसीप्रकार अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकार के साथ मिश्ररुपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव और विशेष के आर्विभाव से अनुभव में आनेवाला ज्ञान वह अज्ञानी, ज्ञेयलुब्ध जीवों के स्वाद में आता है; किन्तु अन्य ज्ञेयाकार की संयोग रहितता से उत्पन्न सामान्य के आर्विभाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला एकाकार अभेदरूप ज्ञान स्वाद में नहीं आता और परमार्थ से विचार किया जाये तो, जो ज्ञान विशेष के आर्विभाव से अनुभव में आता है, वही ज्ञान सामान्य के आर्विभाव से अनुभव में आता है।

(गाथा १५ टीका)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे कोई धन का अर्थी पुरूष बहुत उद्यम से पहले तो राजा को जाने कि यह राजा है, फिर उसी का श्रद्धान करे कि “यह अवश्य राजा ही है,” इसकी सेवा करने से अवश्य धन की प्राप्ति होगी, और फिर उसी का अनुचरण कर, आज्ञा में रहे, उसे प्रसन्न करे।

इसीप्रकार मोक्षार्थी पुरूष को पहले तो आत्मा को जानना चाहिए, और फिर उसी का श्रद्धान करना चाहिये कि “यही आत्मा है, इसका आचरण करने से अवश्य कर्मों से छूटा जा सकेगा” और फिर उसी का अनुचरण करना चाहिए – अनुभव के द्वारा उसीमें लीन होना चाहिए।

(गाथा १७-१८ टीका)

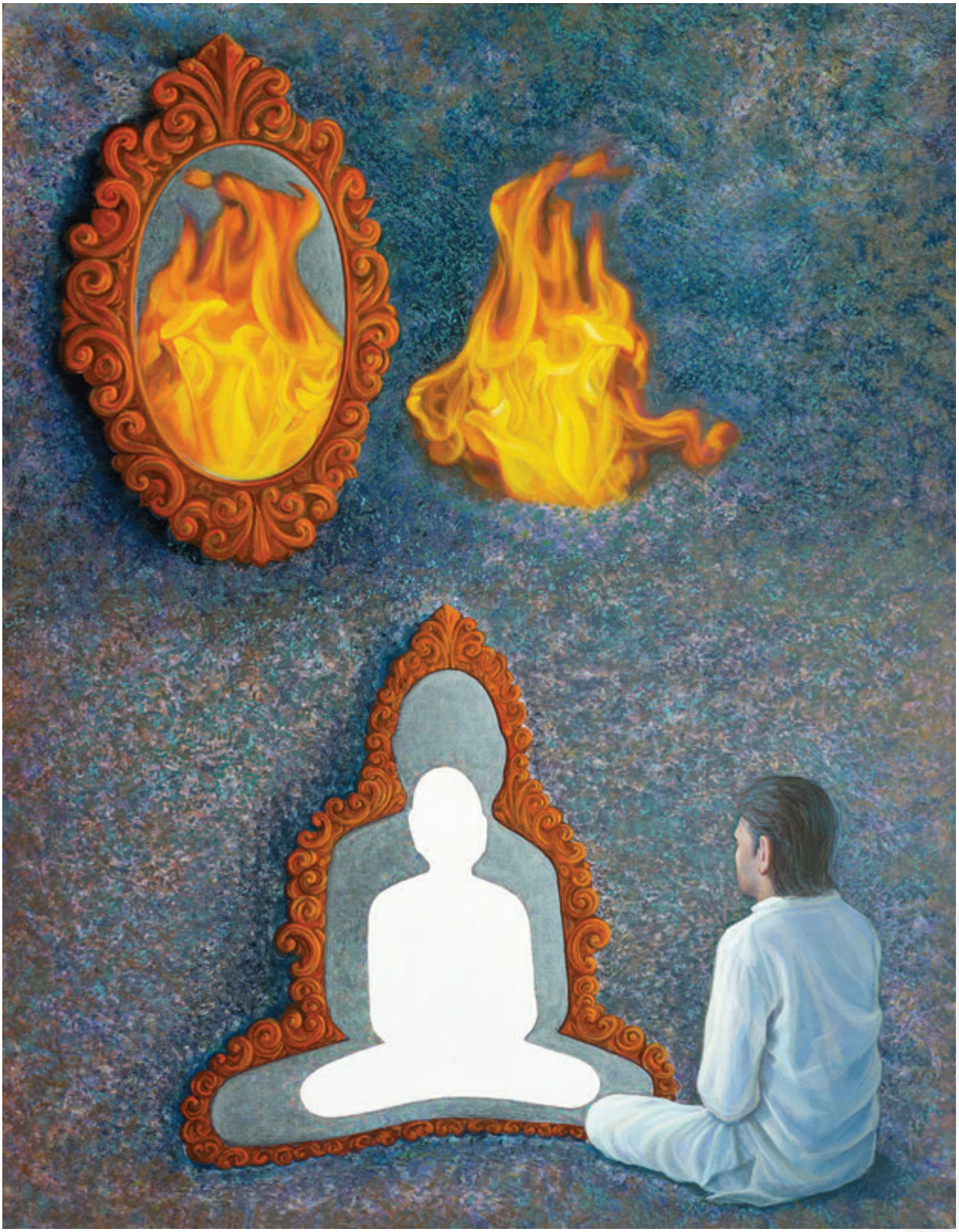

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे दर्पण में अग्नि की ज्वाला दिखाई देती है, वहाँ यह ज्ञात होता है कि “ज्वाला तो अग्नि में ही है, वह दर्पण में प्रविष्ट नहीं है और जो दर्पण में दिखाई दे रही है, वह दर्पण की स्वच्छता ही है।”

इसीप्रकार “कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं, आत्मा की ज्ञान-स्वच्छता ऐसी ही है कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखाई दे”, – ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव आत्मा को या तो स्वयमेव हो अथवा उपदेश से हो, तभी वह प्रतिबुद्ध होता है।

(गाथा १९ भावार्थ)

36” x 48” | Oil on Canvas

जिसप्रकार हाथी आदि पशु अनाज मिश्रित घास खाते है, पर उस मिश्रित स्वाद में यह भेद नहीं कर पाते है कि उसमें घास का स्वाद क़्या है और अनाज का स्वाद क़्या है। वे उस मिश्रित स्वाद को घास का ही स्वाद समझते है।

उसी प्रकार आत्मा और पुद्गल को एक साथ जाननेवाले अज्ञानीजन भेदविज्ञान के अभाव में दोनों की भिन्न पहचान नहीं कर पाते है और पुद्गल में अपनापन स्थापित कर लेते है।

(गाथा २३-२४-२५ टीका)

36" x 48" | Oil on Canvas

जैसे कोई पुरूष धोबी के घर से भ्रमवश दूसरे का वस्त्र लाकर, उसे अपना समझकर ओढ़कर सो रहा है और अपने आप ही अज्ञानी (यह वस्त्र दूसरे का है – ऐसे ज्ञान से रहित) हो रहा है, (किन्तु) जब दूसरा व्यक्ति उस वस्त्र का छोर (पल्ला) पकड़कर खींचता है और उसे नग्न कर कहता है कि –"तू शीघ्र जाग, सावधान हो, यह मेरा वस्त्र बदले में आ गया है, यह मेरा है, सो मुझे दे दे" तब बारम्बार कहे गये इस वाक्य को सुनता हुआ वह, (उस वस्त्र के) सर्व चिन्हों से भलीभाँति परीक्षा करके अवश्य "यह वस्त्र दूसरे का ही है" ऐसा जानकर, ज्ञानी होता हुआ, उस (दूसरे) के वस्त्र को शीघ्र ही त्याग देता है।

इसीप्रकार ज्ञाता भी भ्रमवश परद्रव्यों के भावों को ग्रहण करके उन्हें अपना जानकर, अपने में एक रूप करके सो रहा है और अपने आप अज्ञानी हो रहा है, जब श्रीगुरु परभाव का विवेक (भेदज्ञान) करके उसे एक आत्मभावरूप करते हैं, और कहते हैं कि "तू शीघ्र जाग, सावधान हो, यह तेरा आत्मा वास्तव में एक (ज्ञानमात्र) ही है," (अन्य सर्व परद्रव्य के भाव हैं।) तब बारम्बार कहे गये इस आगम के वाक्य को सुनता हुआ वह, समस्त (स्व-पर के) चिन्हों से भलीभाँति परीक्षा करके, "अवश्य यह परभाव ही हैं मैं एक ज्ञानमात्र ही हूँ।" यह जानकर, ज्ञानी होता हुआ, सर्व परभावों को तत्काल छोड़ देता है।

(गाथा ३५ टीका)

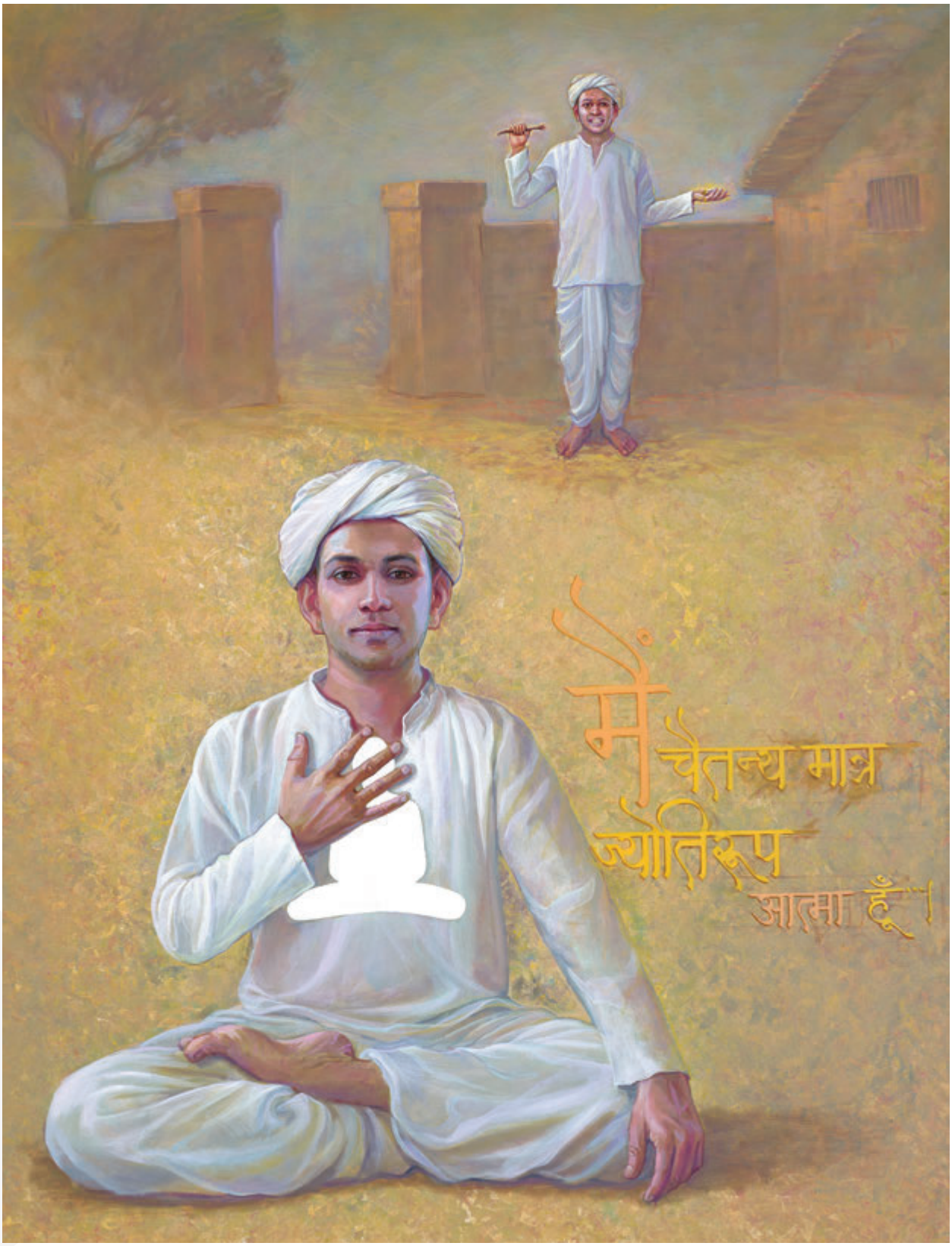

48" x 36" | Oil on Canvas

"जैसे कोई (पुरूष) मुट्ठी में रखे हुए सोने को भूल गया हो और फिर स्मरण करके उस सोने को देखे"

–इस न्याय से, अपने परमेश्वर (सर्व सामर्थ्य के धारक) आत्मा को भूल गया था उसे जानकर, उसका श्रद्धान कर और उसका आचरण करके (उसमें तन्मय होकर) जो सम्यक् प्रकार से एक आत्माराम हुआ, वह ऐसा अनुभव करता है कि मैं चैतन्य मात्र ज्योतिरूप आत्मा हूँ . . .।

(गाथा ३८ टीका)

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे किसी पुरूष को जन्म से लेकर मात्र “घी का घड़ा” ही प्रसिद्ध (ज्ञात) हो, उसके अतिरिक्त वह दूसरे घड़े को न जानता हो, उसे समझाने के लिए जो यह “घी का घड़ा” है सो मिट्टीमय है, घीमय नहीं। इसप्रकार (समझानेवाले के द्वारा) घड़े में “घी के घड़े” का व्यवहार किया जाता है।

इसीप्रकार इस अज्ञानी लोक को अनादि संसार से लेकर “अशुद्धजीव” ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है, वह शुद्ध जीव को नहीं जानता, उसे शुद्ध जीव का ज्ञान कराने के लिए, “जो यह वर्णादिमान जीव है, सो ज्ञानमय है, वर्णादिमय नही” इस प्रकार जीव में वर्णादिमानपने का व्यवहार किया गया है, क्योंकि उस अज्ञानी लोक को “वर्णादिमान जीव” ही प्रसिद्ध (ज्ञात) है।

(गाथा ६७ टीका)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे समुद्र के आवर्त्त (भँवर) ने बहुत समय से जहाज को पकड़ रखा हो और जब वह आवर्त्त शमन हो जाता है, तब वह उस जहाज को छोड़ देता है।

इसीप्रकार आत्मा विकल्पों के आवर्त्त को शमन करता हुआ आस्रवों को छोड़ देता है।

(गाथा ७३ टीका का भावार्थ)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे उत्तरंग और निस्तरंग अवस्थाओं को हवा का चलना और न चलना निमित्त होने पर भी हवा और समुद्र को व्याप्यव्यापकभाव का अभाव होने से कर्त्ता-कर्मपने की असिद्धि है, इसलिये समुद्र ही स्वयं अन्तर्व्यापक होकर उत्तरंग अथवा निस्तरंग अवस्था में आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर उत्तरंग अथवा निस्तरंग –ऐसा अपने को करता हुआ स्वयं एक को ही करता हुआ प्रतिभासित होता है, परन्तु अन्य को करता हुआ प्रतिभासित नहीं होता और फिर जैसे वही समुद्र भाव्य-भावक भाव के अभाव के कारण परभाव का पर के द्वारा अनुभव अशक्य होने से, अपने को उत्तरंग अथवा निस्तरंग रूप अनुभव करता हुआ, स्वयं एक को अनुभव करता हुआ, प्रतिभासित होता है, परन्तु अन्य को अनुभव करता हुआ प्रतिभासित नहीं होता।

इसीप्रकार संसारयुक्त और निःसंसार अवस्थाओं को पुद्गलकर्म के विपाक का सम्भव (होना, उत्पत्ति) और असंभव (न होना) निमित्त होने पर भी पुद्गलकर्म और जीव को व्याप्य-व्यापक भाव का अभाव होने से कर्त्ता-कर्मपने की असिद्धि है, इसलिये जीव ही स्वयं अन्तर्व्यापक होकर संसार अथवा निःसंसार अवस्था में आदि-मध्य-अन्त में व्याप्त होकर संसारयुक्त अथवा संसार रहित ऐसा अपने को करता हुआ अपने को एक को ही करता हुआ प्रतिभासित हो, परन्तु अन्य को करता हुआ प्रतिभासित न हो और फिर उसीप्रकार यही जीव, भाव्य-भावकभाव के अभाव के कारण परभाव का पर के द्वारा अनुभव अशक्य है, इसलिये संसार-सहित अथवा संसार-रहित अपने को अनुभव करता हुआ अपने को एक को ही अनुभव करता हुआ प्रतिभासित हो, परन्तु अन्य को अनुभव करता हुआ प्रतिभासित नहीं होता।

(गाथा ८३ टीका)

36" x 48" | Oil on Canvas

जैसे कुम्हार घड़े की उत्पत्ति में अनुकूल अपने (इच्छारूप और हस्तादि की क्रियारूप) व्यापार परिणाम को जो कि अपने से अभिन्न है और अपने से अभिन्न परिणति मात्र क्रिया से किया जाता है, उसे करता हुआ प्रतिभासित होता है; परन्तु घड़ा बनाने के अहंकार से भरा हुआ होने पर भी (वह कुम्हार) अपने व्यापार के अनुरूप मिट्टी के घट परिणाम को जो कि मिट्टी से अभिन्न है और मिट्टी से अभिन्न परिणति मात्र क्रिया से किया जाता है, उसे करता हुआ प्रतिभासित नहीं होता।

इसीप्रकार आत्मा भी अज्ञान के कारण पुद्गल-कर्मरुप परिणाम के अनुकूल अपने परिणाम को, जो कि अपने से अभिन्न है और अपने से अभिन्न परिणति मात्र क्रिया से किया जाता है, उसे करता हुआ प्रतिभासित हो; परन्तु पुद्गल के परिणाम को करने के अहंकार से भरा हुआ होने पर भी (वह आत्मा) अपने परिणाम के अनुरूप पुद्गल के परिणाम को, जो कि पुद्गल से अभिन्न है और पुद्गल से अभिन्न परिणति मात्र क्रिया से किया जाता है, उसे करता हुआ प्रतिभासित नहीं होता।

(गाथा ८६ टीका)

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे गहरा नीला, हरा, पीला आदि (वर्णरूप) भाव, जो कि मोर के अपने स्वभाव से मोर के द्वारा भाये जातें है (होतें हैं) वे मोर ही हैं और (दर्पण में प्रतिबिंबितरूप से दिखाई देनेवाला) गहरा नीला, हरा, पीला इत्यादि भाव, जो कि (दर्पण) की स्वच्छता के विकारमात्र से दर्पण के द्वारा भाये जाते हैं, वे दर्पण ही हैं।

इसीप्रकार मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति इत्यादि भाव जो कि अजीव के अपने द्रव्य स्वभाव से अजीव के द्वारा भाये जाते हैं, वे अजीव ही हैं और मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अविरति इत्यादि भाव, जो कि चैतन्य के विकारमात्र से जीव के द्वारा भाये जाते हैं, वे जीव ही हैं।

(गाथा ८७ टीका)

48" x 36" | Oil on Canvas

जैसे स्फटिक की स्वच्छता का स्वरूप-परिणमन में (अपने उज्वलतारूप स्वरूप में परिणमन करने में) सामर्थ्य होने पर भी कदाचित् स्फटिक के काले, हरे और पीले; तमाल, केले और सोने के पात्र रूपी आधार का संयोग होने से स्फटिक की स्वच्छता का काला, हरा और पीला -ऐसे तीन प्रकार का परिणाम-विकार दिखाई देता है।

उसीप्रकार (आत्मा के) अनादि से मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति जिसका स्वभाव है -ऐसे अन्य वस्तुभूत मोह का संयोग होने से आत्मा के उपयोग का मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अविरति -ऐसे तीन प्रकार का परिणाम-विकार समझना चाहिये ।

(गाथा ८९ टीका)

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे अपरीक्षक आचार्य के उपदेश से भैंसे का ध्यान करता हुआ कोई भोला पुरूष अज्ञान के कारण भैंसे को और अपने को एक करता हुआ, “मैं गगनस्पर्शी सींगों का बड़ा भैंसा हूँ” ऐसे अध्यास के कारण मनुष्योचित मकान के द्वार में से बाहर निकलने से च्युत होता हुआ उसप्रकार के भाव का कर्त्ता प्रतिभासित होता है।

इसीप्रकार यह आत्मा भी अज्ञान के कारण ज्ञेय-ज्ञायक रूप पर को और अपने को एक करता हुआ, “मैं परद्रव्य हूँ” ऐसे अध्यास के कारण मन के विषयभूत किये गये धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और अन्य जीव के द्वारा (अपनी) शुद्ध चैतन्य धातु रुकी होने से तथा इन्द्रियों के विषयरुप में किये गये रूपी पदार्थों के द्वारा (अपना) केवल बोध (ज्ञान) ढँका हुआ होने से और मृतक शरीर के द्वारा परम अमृतरूप विज्ञानघन (स्वयं) मूर्छित हुआ होने से उसप्रकार के भाव का कर्त्ता प्रतिभासित होता है।

(गाथा ९६ टीका)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे अज्ञान के कारण मृग-मरीचिका में जल की बुद्धि होने से हिरण उसे पीने को दौड़ता है, अज्ञान के कारण ही अन्धकार में पड़ी हुई रस्सी में सर्प का अध्यास होने से लोग (भय से) भागते हैं।

इसीप्रकार अज्ञान के कारण ये जीव, पवन से तरंगित समुद्र की भाँति विकल्पों के समूह को करने से –यद्यपि वे स्वयं शुद्ध-ज्ञानमय हैं, तथापि आकुलित होते हुए अपने आप ही कर्त्ता होते हैं।

(कलश ५८ श्लोकार्थ)

48" x 36" | Oil on Canvas

जैसे हंस दूध और पानी के विशेष (अन्तर) को जानता है।

उसी प्रकार जो जीव ज्ञान के कारण विवेकवाला (भेदज्ञानवाला) होने से पर के और अपने विशेष को जानता है। वह (जैसे हंस मिश्रित हुए दूध और पानी को अलग करके दूध को ग्रहण करता है उसी प्रकार) अचल चैतन्य धातु में सदा आरूढ़ होता हुआ (उसका आश्रय लेता हुआ) मात्र जानता ही है, किंचित मात्र भी कर्त्ता नहीं होता (अर्थात् ज्ञाता ही रहता है, कर्त्ता नहीं होता।)

(कलश ५९ श्लोकार्थ)

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे पानी अपने समूह से च्युत होता हुआ दूर गहन वन में बह रहा हो, उसे दूर से ही ढालवाले मार्ग के द्वारा अपने समूह की ओर बलपूर्वक मोड़ दिया जाये तो फिर वह पानी, पानी को, पानी के समूह की ओर खींचता हुआ, प्रवाहरूप होकर, अपने समूह में आ मिलता है।

इसीप्रकार यह आत्मा अपने विज्ञानघन स्वभाव से च्युत होकर प्रचुर विकल्पजालों के गहनवन में दूर परिभ्रमण कर रहा था, उसे दूर से विवेकरूपी ढालवाले मार्ग द्वारा अपने विज्ञानघन स्वभाव की ओर बलपूर्वक मोड़ दिया गया; इसलिये केवल विज्ञानघन के ही रसिक पुरूषों को, जो एक विज्ञानरसवाला ही अनुभव में आता है- ऐसा वह आत्मा, आत्मा को, आत्मा में खींचता हुआ (अर्थात् ज्ञान, ज्ञान को खींचता हुआ प्रवाहरूप होकर) सदा विज्ञानघन स्वभाव में आ मिलता है।

(कलश ९४ श्लोकार्थ)

36” x 48” | Oil on Canvas

शूद्रा के पेट से एक ही साथ जन्म को प्राप्त दो पुत्रों में से एक ब्राह्मण के यहाँ और दूसरा उसी शूद्रा के यहाँ पला, उनमें से एक तो “मैं ब्राह्मण हूँ” –इस प्रकार ब्राह्मणत्व के अभिमान से दूर से ही मदिरा का त्याग करता है, उसे स्पर्श तक नहीं करता; तथा दूसरा (पुत्र) “मैं स्वयं शूद्र हूँ” –यह मानकर नित्य मदिरा से ही स्नान करता है अर्थात् उसे पवित्र मानता है। यद्यपि वे दोनों शूद्रा के पेट से एक ही साथ उत्पन्न हुए हैं, इसलिए (परमार्थतः) दोनों साक्षात् शूद्र है, तथापि वे जाति-भेद के भ्रम सहित प्रवृत्ति (आचरण) करते हैं।

इसी प्रकार पुण्य-पाप दोनों विभाव परिणति से उत्पन्न हुए है, इसलिए दोनों बन्धरूप ही हैं। व्यवहार दृष्टि से भ्रमवश उनकी प्रवृत्ति भिन्न -भिन्न भासित होने से वे अच्छे और बुरे रूप से दोनों प्रकार दिखाई देते हैं। परमार्थ दृष्टि तो उन्हें एकरूप ही, बन्धरूप ही, बुरा ही जानती है।

(कलश १०१ श्लोकार्थ व भावार्थ)

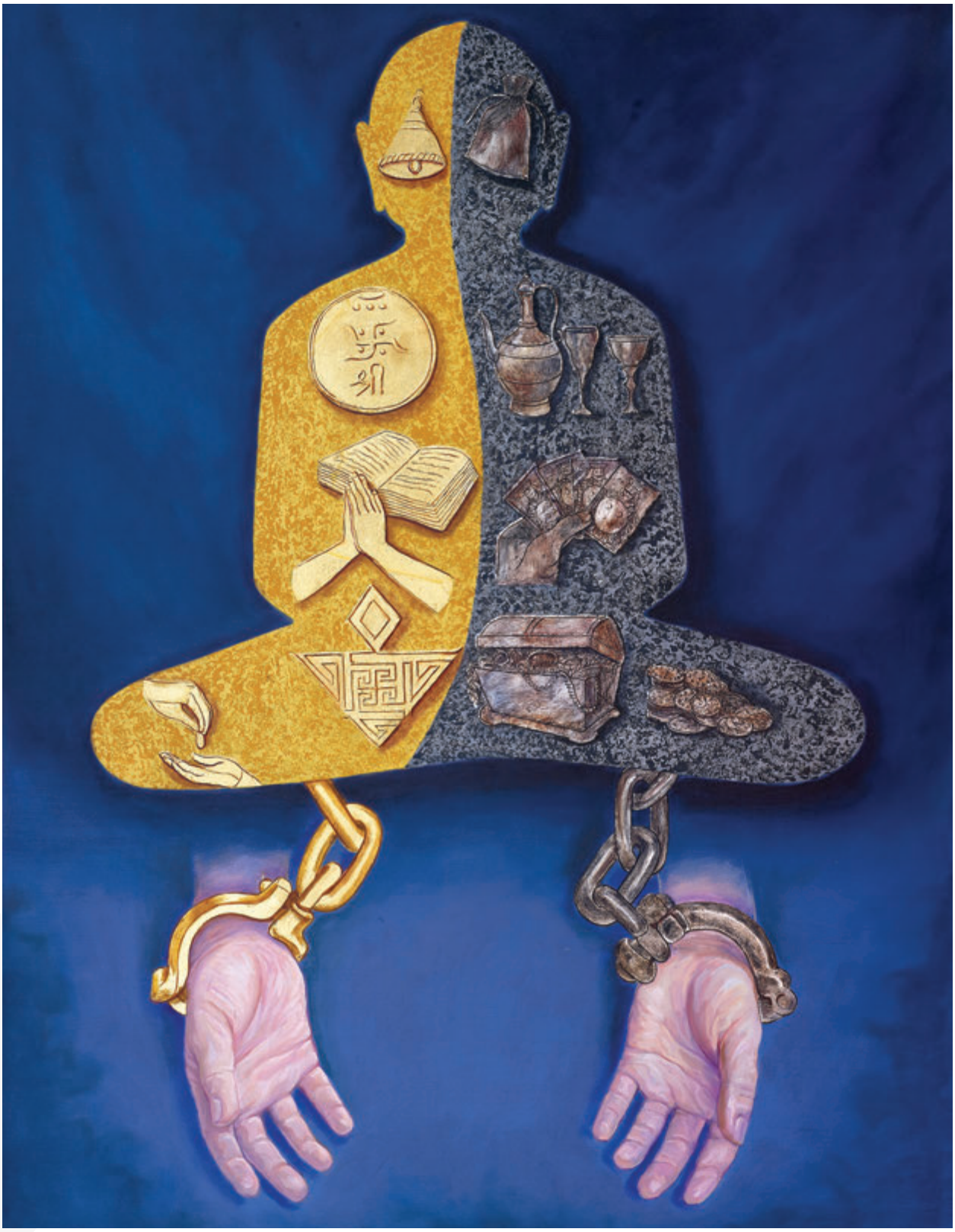

48" x 36" | Oil on Canvas

जैसे सोने की बेड़ी भी पुरूष को बाँधती है और लोहे की बेड़ी भी बाँधती है। सोने की और लोहे की बेड़ी बिना किसी अन्तर के पुरूष को बाँधती है, क्योंकि बन्धनभाव की अपेक्षा से उनमें कोई अन्तर नहीं है।

इसी प्रकार शुभ तथा अशुभ किया हुआ कर्म जीव को (अविशेषतया) बाँधता है। शुभ और अशुभ कर्म बिना किसी भी अन्तर के पुरूष को (जीव को) बाँधते है, क्योंकि बन्ध-भाव की अपेक्षा से उनमें कोई अन्तर नहीं है।

(गाथा १४६ टीका)

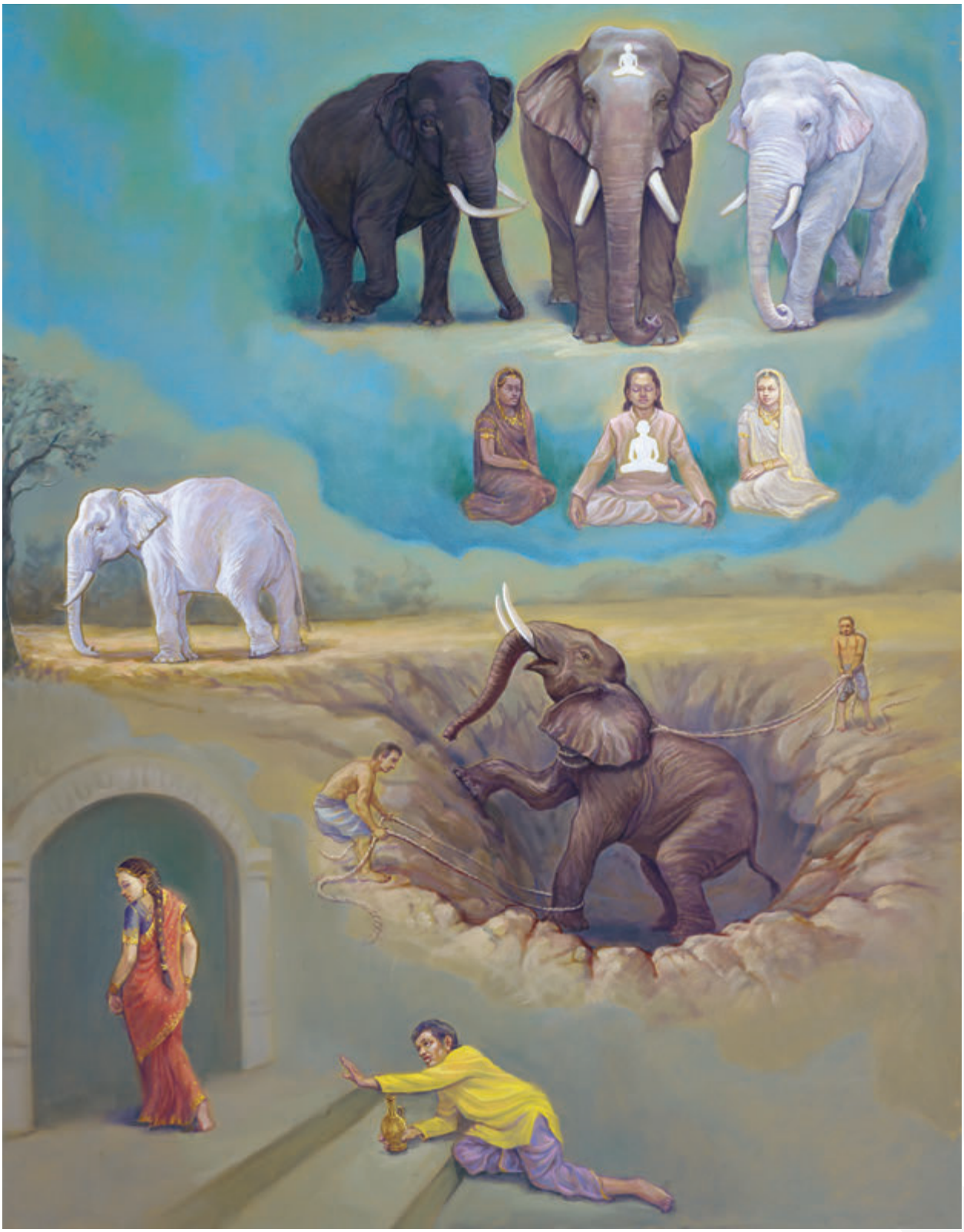

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे हाथी को पकड़ने के लिए हथिनी रखी जाती है, हाथी कामान्ध होता हुआ उस हथिनीरूपी कुट्टनी के साथ राग तथा संसर्ग करता है, इसलिये वह पकड़ा जाता है और पराधीन होकर दु:ख भोगता है। जो हाथी चतुर होता है, वह अपने बन्धन के लिये निकट आती हुई मनोरम अथवा अमनोरम हथिनीरूपी कुट्टनी को परमार्थत: बुरी जानकर उस हथिनी के साथ राग तथा संसर्ग नहीं करता।

इसी प्रकार अज्ञानी जीव कर्मप्रकृति को अच्छा समझकर उसके साथ राग तथा संसर्ग करते हैं, इसलिये वे बन्ध में पड़कर पराधीन बनकर संसार के दु:ख भोगते हैं और जो ज्ञानी होता है, वह अपने बन्ध के लिये उदय में आती हुई शुभ या अशुभ सभी कर्म-प्रकृतियों को परमार्थत: बुरी जानकर उसके साथ कभी भी राग तथा संसर्ग नहीं करता।

(गाथा १४८ टीका)

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे लोह-चुम्बक-पाषाण के साथ संसर्ग से (लोहेकी सुई में)उत्पन्न हुआ भाव लोहे की सुई को (गति करने के लिये) प्रेरित करता है।

उसी प्रकार राग-द्वेष-मोह के साथ मिश्रित होने से (आत्मा में) उत्पन्न हुआ अज्ञानमय भाव ही आत्मा को कर्म करने के लिये प्रेरित करता है।

(गाथा १६७ टीका)

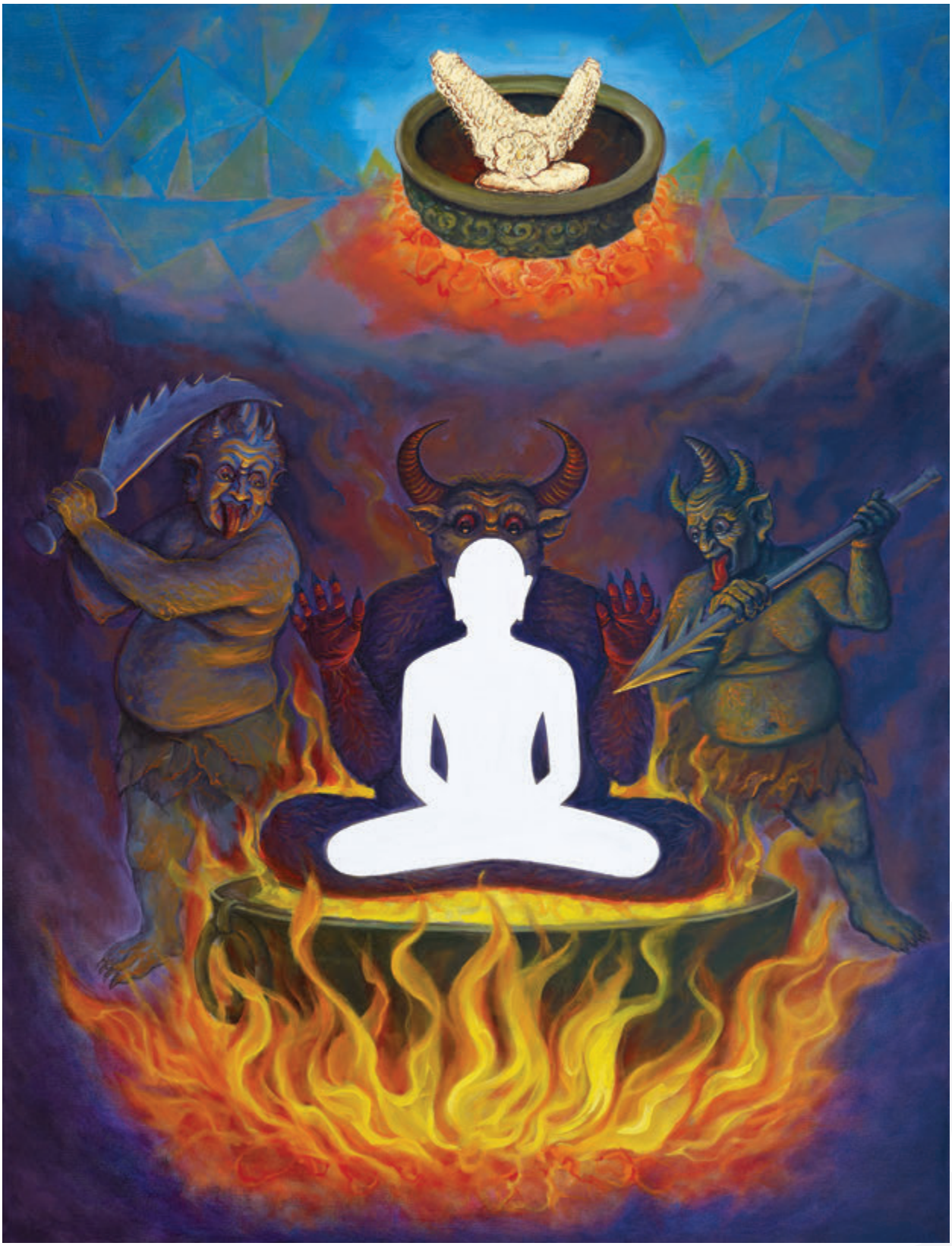

48” x 36” | Oil on Canvas

जैसे प्रंचड अग्नि के द्वारा तप्त होता हुआ भी सुवर्ण सुवर्णत्व को नहीं छोड़ता।

उसी प्रकार प्रचंड कर्मोदय के द्वारा घिरा हुआ होने पर भी (विघ्न किया जाये तो भी) ज्ञान ज्ञानत्व को नहीं छोड़ता, क्योंकि हजारों कारणों के एकत्रित होने पर भी स्वभाव छोड़ना अशक्य है, उसे छोड़ देने पर स्वभाव-मात्र वस्तु का ही उच्छेद हो जायेगा, और वस्तु का उच्छेद तो होता नहीं है, क्योंकि सत् का नाश होना असम्भव है।

(गाथा १८४ टीका)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे किसी सेठ ने अपनी दुकान पर किसी को नौकर रखा और वह नौकर ही दुकान का सारा व्यापार-खरीदना-बेचना इत्यादि सारा कामकाज करता है, तथापि वह सेठ नहीं है; क्योंकि वह उस व्यापार का और उस व्यापार के हानि-लाभ का स्वामी नहीं है, वह तो मात्र नौकर है, सेठ के द्वारा कराये गये सब कामकाज को करता है और जो सेठ है, वह व्यापार सम्बन्धी कोई कामकाज नहीं करता, घर ही बैठा रहता है, तथापि उस व्यापार तथा उसके हानि-लाभ का स्वामी होने से वही व्यापारी (सेठ) है।

यह दृष्टान्त सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि पर घटित कर लेना चाहिए। जैसे नौकर व्यापार करनेवाला नहीं है, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि विषयों का सेवन करनेवाला नहीं है और जैसे सेठ व्यापार करनेवाला है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि विषय सेवन करनेवाला है।

(गाथा १९७ भावार्थ)

36” x 48” | Oil on Canvas

जैसे कोई पुरुष (अपने शरीर में) तेल आदि स्निग्ध पदार्थ लगाकर और बहुत-सी धूलवाले स्थान में रहकर शस्त्रों के द्वारा व्यायाम करता है तथा ताड़, तमाल, केल, बाँस, अशोक इत्यादि वृक्षों को छेदता है, भेदता है, सचित्त तथा अचित्त द्रव्यों का उपघात (नाश) करता है। इस प्रकार नाना प्रकार के कारणों के द्वारा उपघात करते हुए उस पुरुष के धूल का बन्ध (चिपकना) वास्तव में किस कारण से होता है यह निश्चय से विचार करो। उस पुरूष में जो वह तेल आदि की चिकनाहट हैं, उससे उसे धूल का बन्ध होता है (चिपकती है)–ऐसा निश्चय से जानना चाहिये, शेष शारीरिक चेष्टाओं से नहीं होता।

इसीप्रकार मिथ्यादृष्टि अपने में रागादिक करता हुआ, स्वभाव से ही जो बहुत से कर्मयोग्य पुद्गलों से भरा हुआ है, ऐसे लोक में काय-वचन-मन का कर्म (क्रिया) करता हुआ, –अनेक प्रकार के कारणों के द्वारा सचित्त तथा अचित्त वस्तुओं का घात करता हुआ, कर्मरुपी रज से बँधता है। (यहाँ विचार करो कि) इनमें से उस पुरुष के बंध का कारण कौन है? प्रथम, स्वभाव से ही जो बहुत से कर्मयोग्य पुद्गलों से भरा हुआ है–ऐसा लोक बन्ध का कारण नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा हो तो सिद्धों को भी बन्ध का प्रसंग आ जाएगा। काय-वचन-मन का कर्म भी बन्ध का कारण नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा हो तो यथाख्यात संयमियों के भी बन्ध का प्रसंग आ जाएगा। अनेक प्रकार के कारण (इन्द्रियाँ) भी बन्ध के कारण नहीं हैं; क्योंकि यदि ऐसा हो तो केवलज्ञानियों के भी बन्ध का प्रसंग आ जाएगा। सचित्त तथा अचित्त वस्तुओं का घात भी बन्ध का कारण नहीं हैं; क्योंकि यदि ऐसा हो तो जो समिति में तत्पर हैं, उनके (अर्थात् जो यत्नपूर्वक प्रवृत्ति करते है –ऐसे साधुओं के) भी बन्ध का प्रसंग आ जाएगा; इसलिये न्यायबल से ही यह सिद्ध हुआ कि उपयोग में रागादि का करना बन्ध का कारण है। तथा वही पुरूष समस्त तेल आदि स्निग्ध पदार्थ को दूर किए जाने पर बहुत धूलिवाले स्थान में शस्त्रों के द्वारा व्यायाम करता है, छेदता है, भेदता है, सचित्त और अचित्त द्रव्यों का उपघात करता है -ऐसे नाना प्रकार के कारणों के द्वारा उपघात करते हुए उस पुरूष को धूल का बन्ध वास्तव में किस कारण से नहीं होता -यह निश्चय से विचार करो। उस पुरूष में जो वह तेल आदिकी चिकनाहट का अभाव होने से ही धूल इत्यादि नहीं चिपकती। इसी प्रकार बहुत प्रकार की चेष्टाओं में वर्तता हुआ मिथ्यादृष्टि (अपने) उपयोग में रागादि भावों को करता हुआ कर्मरूपी रज से लिप्त होता है, बँधता है। तथा बहुत प्रकार के योगों में वर्तता हुआ सम्यग्दृष्टि उपयोग में रागादि को न करता हुआ कर्मरज से लिप्त नहीं होता।

(गाथा २३७-२४२)

48" x 36" | Oil on Canvas

जैसे बेड़ी आदि से बँधे हुए (पुरूष) को उस बंध संबंधी विचार की श्रृंखला (विचार की परंपरा) बन्ध से छूटने का कारण नहीं है।
उसीप्रकार कर्म से बंधे हुए (पुरूष) की कर्म-बन्ध संबंधी विचार-श्रृंखला कर्म-बन्ध से मुक्त होने का कारण नहीं है।
जैसे बंधन-बद्ध पुरूष बन्धनों को छेदकर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार जीव कर्मों को छेदकर मोक्ष को प्राप्त करता है।
(गाथा २९१-२९२)

36” x 48” | Oil on Canvas

यहाँ शिष्य पूछता है कि चेतक आत्मा और चैत्य विकार - ये दोनों अज्ञानी को एक भासित होते हैं, उसे भगवती प्रज्ञा द्वारा किस प्रकार भेद किया जा सकता है। उसे सम्यग्दर्शन और आत्मानुभ कैसे हो सकता है?

इस प्रश्न का समाधान यह है कि आत्मा और बन्ध की नियत स्वलक्षणों की सूक्ष्म अन्तः सन्धि में प्रज्ञाछैनी को सावधान होकर पटकने से चैत्य रूप विकार को छेदा जा सकता है।

जिस तरह एक दिखने वाला पहाड़ वस्तुतः एक नहीं होता, उसमें अनेक पत्थर होते हैं जो अति नजदीक होने से एक जैसे लगते हैं, उनकी संधि को देखकर उसमें सुरंग लगाने से वह पहाड़ छिन्न-भिन्न हो जाता है। ठीक इसी तरह ज्ञानानन्द स्वभावी आत्मा व पुण्य-पाप एक नहीं है, उनके बीच भी सूक्ष्म संधि हैं। इसलिये स्वानुभव में समर्थ प्रज्ञाछैनी से उसे छेदा जा सकता है।

(समयसार गाथा २९४, प्रवचन रत्नाकर भाग ८, पेज ३४७-३४८)

36" x 48" | Oil on Canvas

जो धान के छिलकों पर ही मोहित हो रहे हैं, उन्हीं को कूटते रहते हैं, उन्होंने चावलों को जाना ही नहीं है।

इसी प्रकार जो द्रव्यलिंग आदि व्यवहार में मुग्ध हो रहे हैं, (अर्थात जो शरीरादि की क्रिया में ममत्व किया करते हैं,) उन्होंने शुद्धात्मानुभवनरुप परमार्थ को जाना ही नहीं है, अर्थात् ऐसे जीव शरीरादि परद्रव्य को ही आत्मा जानते हैं, वे परमार्थ आत्मा के स्वरूप को जानते ही नहीं।

(कलश २४२ भावार्थ)

वैराग्य को वृद्धिगत करने वाली व मुनिदशा की भावना जागृत करने वाली अपूर्व

बारह भावना

36" x 48" | Oil on Canvas

अनित्य भावना

विद्युत लक्ष्मी प्रभुता पतंग, आयुष्य ते तो जलना तरंग,
पुरंदरी चाप अनंगरंग, शुं राचिये त्यां क्षणना प्रसंग!

अहो भव्यों! भिखारी के स्वप्न की तरह संसार का सुख अनित्य है। जैसे उस भिखारी ने स्वप्न में सुख-समूह को देखा और आनंद माना, इसी तरह पामर प्राणी संसार-स्वप्न के सुख-समूह में आनंद मानते हैं। जैसे वह सुख जागने पर मिथ्या मालूम हुआ, उसी प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर संसार के सुख मिथ्या मालूम होते हैं। स्वप्न के भोगों को न भोगने पर जैसे भिखारी को खेद की प्राप्ति हुई, वैसे ही मोहांध प्राणी संसार में सुख मान बैठते हैं, और उसे भोगे हुए के समान गिनते हैं। परन्तु परिणाम में वे खेद, दुर्गति और पश्चात्ताप ही प्राप्त करते हैं। भोगों के चपल और विनाशीक होने के कारण स्वप्न के खेद के समान उनका परिणाम होता है। इसके ऊपर से बुद्धिमान पुरुष आत्म-हित को खोजते हैं।

36” x 48” | Oil on Canvas

अशरण भावना

सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी,
अनाथ एकांत सनाथ थाशे, ऐना विना कोई न बाह्य स्हाशे।

महातपोधन, महामुनि, महाप्रज्ञावंत, महायशवंत, महानिर्ग्रंथ और महाश्रुत मुनि ने मगध देश के श्रेणिक राजा को अपने बीते हुए चरित्र से जो उपदेश दिया है, वह सचमुच अशरण भावना सिद्ध करता है। महामुनि द्वारा भोगी हुई वेदना के समान अथवा इससे भी अत्यन्त विशेष वेदना को अनंत आत्माओं को भोगते हुए हम देखते हैं, यह कैसा विचारणीय है। संसार में अशरणता और अनंत अनाथता छाई हुई है। उसका त्याग उत्तम तत्त्वज्ञान और परम शील के सेवन करने से ही होता है। यही मुक्ति का कारण है। जैसे संसार में रहता हुआ पुरुष अनाथ था उसी तरह प्रत्येक आत्मा तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के बिना सदैव अनाथ ही है। सनाथ होने के लिये सदैव सद्धर्म और सद्गुरु को जानना और पहचानना आवश्यक है।

36” x 48” | Oil on Canvas

संसार भावना

अनंत सौख्य नाम दु:ख त्यां रही न मित्रता!
अनंत दु:ख नाम सौख्य प्रेम त्यां, विचित्रता!!
उघाड न्याय नेत्र ने निहाळ रे! निहाळ तुं!
निवृत्ति शीघ्रमेव धारि ते प्रवृत्ति बाळ तुं ।।

सुग्री नगर के राजा बलभद्र और पटरानी मृगा के पुत्र को लोग मृगापुत्र कहकर पुकारते थे। एक दिन कुमार अपने झरोखे में बैठे थे, तब उनकी दृष्टी एक शांत तपस्वी साधु पर पड़ी। युवराज उस मुनि को निरख-निरखकर देख रहे थे। अचानक उन्हें जातिस्मरण हुआ। उस मृगापुत्र को पूर्व भव का स्मरण हुआ। शीघ्र ही मृगापुत्र विषय से विरक्त हुए और संयम की और आकृष्ट हुए। युवराज ने माता-पिता के समीप जाकर संसाररुपी समुद्र से पार होने के लिए दीक्षा ग्रहण करने की इच्छा व्यक्त की। कुमार के निवृत्तीपूर्ण वचनों को सुनकर माता-पिता शोकार्त होकर बोले, हे पुत्र! चारित्र का पालना बहुत कठिन है। जैसे तराजू से मेरु पर्वत तोलना दुष्कर है, वैसे ही निश्चलपन से शंकारहित दश प्रकार के यति धर्म का पालना दुष्कर है। हे पुत्र! शब्द, रुप, रस, गंध, स्पर्श इन पाँच प्रकार के मनुष्यसंबंधी भोगों को भोगकर मृत्युयोगी होकर वृद्ध अवस्था में धर्म का आचरण करना। माता पिता के भोगसंबंधी उपदेश सुनकर मृगापुत्र बोले जिसकी विषय की ओर रुचि नहीं उसे संयम का पालन दुष्कर नहीं है। इस शरीर ने शारीरिक और मानसिक वेदना को आत्मारुप से अनंत वार सहन किया है। जन्म और मरण ये भोग का धाम है। चतुर्गति रुप संसार अटवी में भटकते हुए मैंने अति रौद्र दु:ख भोगे है। मैंने सर्व भवों में असाता वेदनीय भोगी है। वहाँ क्षणमात्र भी सुख न था।

मृगापुत्र के वैराग्यभाव से संसार परिभ्रमण के दु:ख को सुनकर माता-पिता ने पुत्र को दीक्षा ग्रहण करने की आज्ञा दे दी। आज्ञा मिलते ही मृगापुत्र समस्त प्रपंचों को लांघकर दीक्षा लेने के लिए निकल पडे। वह ज्ञान से, आत्मचरित्र से, तप से और प्रत्येक महाव्रत की पाँच-पाँच भावनाओं कि निर्मलता से अनुपम रुप से विभूषित हुए। अंत में वह महाज्ञानी युवराज मृगापुत्र सम्यक् प्रकार से बहुत वर्ष तक आत्मचरित्र की सेवा करके एक मास का अनशन करके सर्वोच्च मोक्षगति में गये। तत्त्वज्ञानी सदा ही संसार परिभ्रमण की निवृत्ति का पवित्र विचार करते हैं ।

36” x 48” | Oil on Canvas

एकत्व भावना

शरीरमां व्याधि प्रत्यक्ष थाए, ते कोई अन्ये लई ना शकाय,
ए भोगवे एक स्व आत्म पोते, एकत्व एथी नय सुज्ञ गोते?

नमिराज विदेह देश के अधिपति थे। वे अनेक यौवन वती मनोहारिणी स्त्रियों के समुदाय से घिरे हुए थे। दर्शनमोहिनी के उदय न होने पर भी वे संसार-लुब्ध जैसे दिखाई देते थे। एक बार उनके शरीर में दाहज्वर रोग की उत्पत्ति हुई। मानों समस्त शरीर जल रहा हो ऐसी जलन समस्त शरीर में व्याप्त हो गई। रोम-रोम में हजार बिच्छुओंके डँसने जैसी वेदना के समान दु:ख होने लगा। वैद्य-विद्या में प्रवीण पुरुषों के औषधोपचार का अनेक प्रकार से सेवन किया, परन्तु वह सब वृथा हुआ। यह व्याधि लेशमात्र भी कम न होकर अधिक ही होती गई। उसको दूर करने वाले पुरुष की खोज चारों तरफ होने लगी। अंत में एक महाकुशल वैद्य मिले, उसने मलयागिरि चंदन का लेप करना बताया। रुपवती रानियाँ चंदन घिसने में लग गई। चंदन घिसने से प्रत्येक रानी के हाथ में पहने हुए कंकणों के समूह से खलभलाहट होने लगी। मिथिलेश के अंग में दाहज्वर की एक असह्य वेदना तो थी ही और दूसरी वेदना इन कंकणों के कोलाहल से उत्पन्न हो गई। जब यह खलभलाहट उनसे सहन न हो सकी तो उन्होंने रानियों को आज्ञा दी कि चंदन घिसना बंद करो तुम यह क्या शोर करती हो? मैं एक महाव्याधि से तो ग्रसित हूँ ही, और दूसरी व्याधि के समान यह कोलाहल हो रहा है, यह असह्य है। तब सब रानियों ने केवल एक-एक कंकण को मंगलस्वरुप रखकर बाकी कंकणों को निकाल डाला इससे होता हुआ खलभलाहट शांत हो गया। नमिराज ने रानियों से पूछा, क्या तुमने चंदन घिसना बंद कर दिया? रानियों ने कहा कि नहीं, केवल कोलाहल शांत करने के लिए अब हमने कंकणों के समूह को अपने हाथ में नही रखा इसलिये कोलाहल नहीं होता। रानियों के इतने वचनों को सुनते ही नमिराज के रोमरोम में एकत्व उदित हुआ-एकत्व व्याप्त हो गया, और उनका ममत्व दूर हो गया। अहो चेतन! तू मान कि तेरी सिद्धि एकत्वमें ही है। अधिक के मिलने से अधिक ही उपाधि बढ़ती है। संसार में अनन्त आत्माओं के संबन्ध से तुझे उपाधि भोगने की क्या आवश्यकता है! उसका त्याग कर और एकत्व में प्रवेश कर देख! अब यह एक कंकण खलभलाहट बिना कैसी उत्तम शान्ति में रम रहा है। जब अनेक थे तब यह कैसी अशांति का भोग कर रहा था इसी तरह तू भी कंकणरूप है। उस कंकण की तरह तू भी जब तक स्नेही-कुटुंबरूपी कंकण-समुदाय में पड़ा रहेगा तब तक भवरूपी खलभलाहट का सेवन करना पडेगा। और यदि इस कंकण की वर्तमान स्थिति की तरह एकत्व की आराधना करेगा तो सिद्धगतिरूपी महापवित्र शांति को प्राप्त करेगा।

36” x 48” | Oil on Canvas

अन्यत्व भावना

एक राजन थे जिन के सिरपर प्रभुता का तेजस्वी व प्रकाशमान मुकूट सुशोभित था। उनके साधन सामग्री का, दल का, नगर का, वैभव का, विलास का,संसार में किसी भी प्रकार के न्यूनभाव न था। ऐसे राजन अपने सुंदर आदर्श भवन में वस्त्राभूषणों से विभूषित होकर मनोहर सिंहासन पर बैठे थे।

उनके हाथ की एक अंगुली में से अंगुठी निकल पडी। राजन का ध्यान उस ओर आकर्षित होने पर उन्हें अपनी अंगुली बिलकुल शोभाहीन मालूम होने लगी। राजन गंभीर होकर सोचने लगे और उन्होंने दूसरी अंगुठी निकाल ली ऐसे उन्होंने दशो अंगुलियाँ खाली कर डाली। अंगुलियाँ शोभाहीन दिखाई देने लगी। इनके शोभाहीन मालूम होने से राजन अन्यत्व भावना में गद्‌गद् होकर बोले, कैसी विचित्रता है? यह अलंकार रंगबिरंगे वस्त्र आदि से तो यह शरीर शोभित होता है। किसी और चीज से रमणीयता धारण करनेवाले शरीर को मैं कैसे अपना मानुँ? ऐसा भाव तो केवल दु:खप्रद और वृथा है। मेरी आत्मा का इस शरीर से कभी न कभी वियोग होनेवाला है और यह तो केवल अन्यत्व भावना को ही धारण किये हुए है उसमें ममत्व क्यों रखना चाहिए? यह पुत्र, वैभव आदि के सुखका मुझे कुछ भी अनुराग नहीं है।

राजन के अंत:करण में वैराग्य का ऐसा प्रकाश पड़ा कि उनका तिमिर-पट दूर हो गया। उन्हें अनुपम कांतिमान ध्यान प्रकट हुआ। उसी समय उन्होंने पंचमुष्टी केशलोंच किया। महावीतरागी सर्वज्ञ सर्वदर्शी होकर वे निराकार परमात्मा हो गये।

36” x 48” | Oil on Canvas

अशुचि भावना

खाण मूत्र ने मळनी, रोग जरानुं निवासनुं धाम;
काया एवी गणि ने, मान त्यजीने कर सार्थक आम।।

सनतकुमार चक्रवर्ती के वर्ण और रुप की प्रशंसा चारो ओर फैली थी। प्रशंसा सुनकर दो देव शंका निवारण के लिए ब्राह्मण का वेश धारण करके सनतकुमार के अंत:पुर में गये। उस समय सनतकुमार के शरीर पर उबटन लगा हुआ था। वे एक छोटासा पंचा पहने हुए थे और स्नान मंजन करने बैठे थे। ब्राह्मण के रुप में आये हुए देवों को उनका मनोहर मुख, कांचन वर्ण की काया, चंद्र जैसी कांति देखकर बहुत आनंद हुआ और उन्होंने सिर हिलाया। चक्रवर्ती के पूछने पर देवों ने कहा सिर हिलाने का कारण वह है कि जैसा लोक में कहा जाता है वैसे ही आपका रुप है। सनतकुमार अपने रुप की प्रशंसा सुनकर प्रभुत्व में आकर बोले, जब मैं राजसभा में वस्त्रालंकार धारण करके सज्ज होकर सिंहासन पर बैठता हूँ तब मेरा रुप देखने योग्य होता है।

जब सनतकुमार उत्तम वस्त्रालंकार धारण करके सज्ज होकर सिंहासन पर बैठे थे तब वहां वे देवता ब्राह्मण के रुप में आये। अद्‌भुत रुप से आनन्द पाने के बदले मानो खेद हुआ हो, ऐसे उन्होंने अपने सिर को हिलाया। पहले समय की अपेक्षा दूसरी तरह सिर हिलाने का कारण चक्रवर्तीने पूछा तब देवों ने कहा कि इस रुप में और उस रुप में जमीन आसमान का फेर हो गया है। चक्रवर्ती ने जब स्पष्ट समझाने को कहा तब देवों ने कहा हे अधिराज! आपकी काया पहले अमृततुल्य थी, इस समय जहर के तुल्य है। जब आपका अंग अमृततुल्य था तब आनन्द हुआ और इस समय जहर के तुल्य है इसलिए खेद हुआ। उन्होंने बात को सिद्ध करने के लिए कहा कि, आप तांबूल को थूंके, त्वरित उस पर मक्खियाँ बैठेगी और वे परलोक पहुँच जाएगी। सनतकुमार ने उसकी परीक्षा की तो वह बात सत्य निकली। पूर्व कर्म के पाप के भाव से इस काया के मद की मिलावट होने से चक्रवर्ती की काया विषमय हो गई थी। विनाशी और अशुचिमय काया के ऐसे प्रपंच को देखकर सनतकुमार के अंत:करण में वैराग्य उत्पन्न हुआ। महल की प्रभुता त्यागकर वे चल पडे। साधु रुप में विचरते समय उनको कुष्ट महारोग हो गया। उनके सत्यत्व की परीक्षा लेने के लिए एक देव वैद्य के रुप में आये और साधु से रोग निवारण करने के लिए पूछा तब साधु ने कहा “हे वैद्य! कर्मरुपी रोग महाउन्मत है, इस रोग को दूर करने की यदि तुम्हारी सामर्थ्य हो तो खुशी से मेरे रोग को दमन करो। यदि सामर्थ्य न हो तो यह रोग को भले ही रहने दो।” देव ने कहा, यह रोग दूर करने के लिए मुझमें सामर्थ्य नहीं है। साधु ने अपनी लब्धि की परिपूर्ण प्रबलता से थूँकवाली अंगुली करके उसे रोगपर फेरी की तत्काल रोग का नाश हो गया और काया जैसी थी वैसी हो गयी। उस समय देव ने अपने स्वरुप को प्रकट किया और वन्दन करके चला गया। जिस काया के प्रत्येक अंग में रोग का भंडार है, मलमूत्र, विष्टा, हाड माँस और श्लेष्म से जिसका ढाँचा टिका हुआ है, केवल त्वचा से जिसकी मनोहरता है, उस काया का मोह सचमुच विभ्रम है। यह देह तो सर्वथा अशुचिमय ही है।

36” x 48” | Oil on Canvas

आस्रव भावना

गजकुमार श्रीकृष्ण के छोटे भाई और नेमिनाथ भगवान के चचेरे भाई थे। विवाह योग्य होने पर उनका विवाह सोमशर्मा सेठ की सुंदर पुत्री सोमा तथा कई और अन्य कन्याओं से हुआ। उसी समय भगवान नेमिनाथ समवशरण सहित गिरनार पर्वत पर विराजमान थे। इसलिए गजकुमार और सभी दर्शन हेतु गिरनार पहुँचे। उस वक्त भवतापनाशक दिव्यध्वनि में आस्रव भावना का स्वरुप समझाया जा रहा था। सभी संसार का मूलकारण मिथ्यात्वादी आस्रव भाव हैं और वे आकुलतामयी और दुखदायी है। इन आस्रव के विरुद्ध अपनी त्रिकाली आत्मा शुद्ध स्वभाव परमशुचि, अविकारी होने से सुखरुप और परम उपादेय है।

वीतराग रसयुक्त दिव्यध्वनि में आस्रव भावना का वर्णन सुनकर गजकुमार का हृदय वैराग्य से भर गया और वे आत्मचिंतवन में लीन हो गये। संसार रमणी नहीं बल्की शिव रमणी को वरने के लिए मेरा अवतार हुआ है। इसी विचार में गजकुमार ने माता-पिता की आज्ञा लेकर प्रभु के पास जिनदीक्षा धारण की। उसके साथ सभी कन्याओं ने भी आर्यिका दीक्षा अंगीकार की।

श्मशान के समीप आत्मध्यान में लीन गजकुमार मुनि के पास क्रोधित सोमा के पिता आए और उन्होंने स्मशान की मिट्टी की सिगड़ी बनाकर उसमें स्मशान के गरम अंगारे डालकर उसे पगड़ी की तरह गजकुमार मुनि के मस्तक पर रखी। मुनिराज आत्मचिंतन में लीन थे। उन्होंने विचार किया उपसर्ग मेरे कसौटी का काल है। अस्थिरताजन्य आस्रव भाव छोडके शुद्ध स्वरुप में स्थिरता रखकर सिद्धदशा प्रकट करने का यह अपूर्व अवसर है। सोमा के पिता ने मुझे अग्नि की सिगड़ी नहीं बल्कि महान मोक्ष की पगड़ी ही डाली है। गजकुमार अपने शुद्ध स्वभाव में ऐसे लीन हो गये कि उनका उपयोग फिर बाहर आया ही नहीं। अंतमुर्हूत में ही उन्होंने केवलज्ञान और मोक्षदशा प्रकट की। आस्रव भावना की आराधना से सरपर रखी हुई गरम सिगड़ी की पगड़ी को मोक्ष की पगड़ी में पलटने वाले अंतकृत केवली गजकुमार को कोटि कोटि प्रणाम।

36” x 48” | Oil on Canvas

संवर भावना

राजा दशरथ और राम के पूर्वज ऐसे अयोध्या के महाराज कीर्तिधर महावैरागी और मोक्षगामी महात्मा थे। एक बार सूर्यग्रहण देखकर महाराज कीर्तिधर को वैराग्य हुआ और उन्होंने जिनदीक्षा धारण करने की इच्छा व्यक्त की। मंत्रीगण और प्रधान पुरुषों की विनती अनुसार उन्होंने राजकुमार के जन्म के त्वरित बाद बालक राजकुमार को राजतिलक करके जैनेश्वरी मुनिदीक्षा धारण कर ली। महाराज का मुनि होना महारानी सहदेवी को पसंद नहीं था। उन्हें मुनिलिंग के प्रति घृणा थी। इसलिए महारानी ने पुत्र सुकौशल को मुनिदर्शन से दूर ही रखा। कई साल पश्चात विहार करते-करते मुनिराज कीर्तिधर अयोध्या के उद्यान में पहुँचे और आहार के लिए उन्होंने नगर में प्रवेश किया। राजमाता सहदेवी को लगा कि मुनि को देखकर पुत्र सुकौशल भी संसार त्याग करके मुनिदीक्षा धारण करेगा, तो मैं किस के सहारे से जिऊँगी; ऐसा विचार करके महारानी ने द्वारपाल को बुलाकर मुनिराज को नगर के बाहर निकाल देने की आज्ञा की।

मुनिराज कीर्तिधर का ऐसा अविनय देखकर सुकौशल की धायमाता दु:खी होकर रोने लगी। सुकौशल के पूछने पर धायमाता ने मुनिराज सुकौशल के पिता होने की बात कही। यह सुनकर सुकौशल मुनिराज के दर्शन के लिए निकल पड़े। द्वारपाल के प्रवेश न देने, दर्शन न देने के कारण लज्जित होकर क्षमायाचना करके खेद व्यक्त किया और आत्महित का उपाय जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। गंभीर स्वर में मुनिराज ने कहा यह मनुष्य जन्म भवभ्रमण का अभाव करने के लिए है, स्वपर भेद विज्ञान से शुद्ध स्वभाव का अवलंबन करके वीतरागदशा प्रकट होती है। इससे उत्पन्न गलिच्छ कर्मों को रोकना ही संवरदशा है। संवरदशा का उपदेश सुनकर सुकौशल महाराज ने पुत्र को राजतिलक करके वैराग्यपूर्वक जिनदीक्षा धारण की।

पति के बाद पुत्र के जिनदीक्षा धारण करने की बात से सहदेवी को बहुत दुख हुआ और आर्तध्यान के बुरे भावोंसे मरकर तिर्यंच योनी में बाघिन हुई। वह बाघिन महाक्रोध से कोपायमान थी और भयंकर गर्जना करती वन में एकाकी मुनिराज सुकौशल के पास आ पहुँची। मुनिराज ध्यानमग्न थे। बाघिन महावेग से उछलकर मुनिके शरीर को खाने लगी। खाते-खाते उसका ध्यान मुनि के हाथपर जो पद्मचिन्ह था उस पर नजर पडी। पद्मचिन्ह देखते ही उसे पूर्वभव का जातिस्मरण हुआ और वह दुखी हुई। उसी समय कीर्तिधर मुनिराज ने बाघिन को धर्म वचनों से सम्बोधित करते हुए कहा-“हे पापिनी! तु सुकौशल की माता सहदेवी थी और तु ही अपने पुत्र का भक्षण करती है, इस से बडी संसार की विचित्रता क्या हो सकती है? हे सुकौशल माता! संसार ही समग्र दु:ख का कारण है इसलिए संवरदशा का अवलंबन कर।” पूर्वस्मरण और मुनि कीर्तिधर के उद्धबोधन से शांत हुई बाघिनने निराहार व्रत अंगीकार किये और संवरदशा का चिंतन कर स्वर्ग में गई। और संवर साधना में लीन सुकौशल मुनि ने उपसर्ग विजेता बनकर केवलज्ञान प्रगट कर के अंतमुर्हूत में मोक्षदशा भी प्रकट कर ली। संवर में पराक्रमी ऐसे संवरवीर मुनि सुकौशल को शत शत प्रणाम।

36" x 48" | Oil on Canvas

निर्जरा भावना

भगवान ऋषभदेव का वैराग्य

आदि तीर्थाधिनाथ ऋषभदेव ने धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करके धर्मयुग का प्रारंभ किया। निर्जरा भावना के चिंतन से अत्यंत विरक्त होकर ऋषभदेव स्वयं दीक्षित हुए। दिगंबर जिनलिंग धारण करके और छः महिने का प्रतिमायोग धारण करके कायोत्सर्ग मुद्रा में मौनपूर्वक खड़े रहे। तप के प्रभाव से अनंत कर्मों की निर्जरा करके महान ऋद्धि प्रकट हुई, छः महिने ध्यान योग में लीन होकर अतिन्द्रिय आनंद अनुभव करते हैं। ध्यान से बाहर आकर वे आहार के लिए विहार करते है। परन्तु निर्दोष आहार और आहार विधि से लोग अनजान थे इसलिए आहार का योग न बन पाया। और छः महिने तक वे तप करते रहे। इस तरह एक वर्ष के तप के प्रभाव से तपोवन में रात भी प्रकाशमान दिखने लगी, हिंसक पशु वैर छोडकर शांति से रहने लगे।

तप के प्रभाव से इंद्रासन कंपित होता है। इन्द्र महाराज अत्यंन्त भक्तिपूर्वक तपस्वी तीर्थंकर की पूजा करते हैं। तीर्थंकर मुनिराज ऋषभदेव निर्जरा भावना के फलस्वरुप केवलज्ञान प्राप्त करके दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश देकर धर्मयुग का प्रारंभ करते हैं। तपस्वी तीर्थंकर ऋषभदेव को कोटि कोटि नमन।

36” x 48” | Oil on Canvas

लोक भावना

पुराण प्रसिद्ध नगरी अयोध्या के महाराजा सुमित्र की महारानी भद्रा की कोंख से महा तेजस्वी पुण्यशाली पुत्र रत्न का जन्म हुआ। महारानी ने पुत्र के जन्म के पूर्व देखे शुभ सपनों की बात महाराजा को बताई। पुत्र के मुख चन्द्र को देखकर महाराजा ने सपनों के फल दर्शाते हुए बताया की यह बालक मोक्षमार्गी महात्मा और चक्रवर्ती का अवतार है। बालक का इन्द्र जैसा तेजस्वी रूप देखकर माता-पिता ने इन्द्र का ही अपरनाम “मघवा” रखा।

यह “मघवा” पंद्रहवे तीर्थंकर धर्मनाथ के तीर्थ में हुए भरतक्षेत्र के भूषण तीसरे चक्रवर्ती थे। चक्रवर्ती के अद्भुत वैभव एवं भोगोपभोग में “मघवा” को चैन नहीं पड़ता था और बाहर में छः खंड को साधने वाले चक्रवर्ती मघवा अन्दर में अखंड आत्मा की साधना के लिए उत्सुक रहते थे। ऐसे महा वैरागी चक्रवर्ती मघवा एक दिन दैवी वस्त्राभूषण धारण कर के राज्यसभा में प्रवेश कर ही रहे थे तब एक दूत ने सन्देश दिया कि महाराजा “अभयघोष” केवली मनोहर नामक उद्यान में पधारे हैं। सुनते ही चक्रवर्ती भगवान की गंधकुटी में पहुँच गए। भगवान के दर्शन-पूजन-स्तुति कर के चक्रवर्ती अपने स्थान पर बैठ गए। बाद में खडे होकर आदर पूर्वक पूछा “हे नाथ! सम्पूर्ण लोक में अनादि काल से परिभ्रमण का अंत लाकर सिद्ध दशा की स्थिर स्थिति पाने का उपाय कृपा कर के दर्शाये।” केवली भगवान किसी के साथ प्रश्न-उत्तर या समाधान नहीं करते, पर चक्रवर्ती जैसे विशिष्ट पुरुष के द्वारा प्रश्न के समाधान में सहज दिव्यध्वनि खिरती है जिस में केवली भगवंत ने लोक भावना का स्वरुप दर्शाया:

“हे भव्य! अनादि काल से चल रहे सम्पूर्ण लोक के भ्रमण का एकमात्र कारण लोक संज्ञा है, और यह भ्रमण का निवारण कर के लोकाग्र स्थिर स्थिति प्राप्त करने का उपाय लोक भावना का चिंतवन है। लोक संज्ञा के कारण जीव पर पदार्थ को जानते समय उस के प्रति मोह-राग-द्वेषरूप कर्तृत्व भाव करता है, जिस के कारण कर्म का बंधन और उस के फलस्वरुप सम्पूर्ण लोक में परिभ्रमण चालू रहता है। लोक भावना के अभ्यास पूर्वक उस का चिंतवन करने से लोकाग्र सिद्धदशा; शाश्वत सुख-शान्ति-स्थिरता की प्राप्ति होती है।”

केवली भगवान की अमृत वाणी का पान करते ही चक्रवर्ती मघवा लोक भावना के चिंतवन में मग्न हो जाते है। समयांतर में वैराग्य प्रकट कर के वे “मुनि मघवा” हो जाते है। और फिर निज चैतन्य लोक में अप्रतिम वीर्य का प्रसार कर के केवलज्ञान और शाश्वत सुखमयी मोक्ष दशा को प्राप्त कर लेते है ।

36" x 48" | Oil on Canvas

बोधिदुर्लभ भावना

यह कथा है कोटि सागरोपम तक परिभ्रमण करते हुए जीव की, जो बोधिदुर्लभ भावना भाते हुए तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जा बसे। जब तीर्थंकर ऋषभदेव वैराग्य को प्राप्त हुए तब उन के साथ भरत पुत्र मरीचि भी संयमधारी हो गए, पर परीषहों की पीड़ा से घबराकर कुभाव को प्राप्त हो गए। उन्होंने नया पंथ-सांख्यमत प्रकट किया।

आगे वह मरीचि का जीव ब्राह्मण के यहाँ विद्वान पुत्र और मरकर सौधर्म स्वर्ग में देव के रुप में उत्पन्न हुए। फिर वही जीव रानी मृगावती के पुत्र के रुप में त्रिपुष्ठ नारायण बने। बलवान त्रिपुष्ठ ने एक बार सिंह के साथ लड़ते हुए एक हाथ से बलपूर्वक सिंह को पकड़कर दूसरे हाथ को लपलपाती जिह्वावाले सिंह के मुख में हाथ डालकर उसे पछाड़ दिया और उस पंचानन सिंह का वध किया। अपने निदान के वश से रौद्रध्यानपूर्वक मरकर त्रिपुष्ठ तैंतीस सागर के आयुवाले सातवें नरक में पहुंचे। और नरक से निकलकर सिंह योनी में उत्पन्न हुए।

जंगल में सिंह एक मृग का वध कर रहा था। तब वहाँ से दयालु अजितजय नामक चारणमुनि, अमितगुण नामक मुनि के साथ आकाश मार्ग से जा रहे थे। उन्हें उस सिंह को देख कर तीर्थंकर के वचनों का स्मरण हो गया। वे आकाश से उतरकर सिंह के पास आये और करुणावश संबोधन करते है, "हे मृगपति! तु शान्ति का निलय बन तथा कषाय दोषों को विलय कर, कुमति-मिथ्यात्व के अनुबन्ध का शीघ्र ही त्याग कर और जिनवर दुर्लभ बोध का अपने मन में विचार कर।" योग्यतावश सिंह बोधिदुर्लभ भावना का चिंतवन करता है और आत्मज्ञान की प्राप्ति कर के समाधिमरण धारण करता हैं।

वह आत्मज्ञानी सिंह, तपश्चर्या के फल स्वरूप सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। और दसवें भव में चैत्र सुदि १३ के दिन कुण्डलपुर में राजा सिद्धार्थ और राणी त्रिशला के पुत्र के रूप में जन्में। उनका नाम वर्धमान रखा गया। वे जन्म से ही वीरता को सार्थक करनेवाले वीर थे। राजकुमार वर्धमान ने जिन दीक्षा धारण की और ध्यान योग से केवलज्ञान प्राप्त किया। मुनिराज द्वारा दुर्लभ बोधि को प्राप्त कर के अनंत परिभ्रमण करता जीव भगवान महावीर बन गया।

36” x 48” | Oil on Canvas

धर्म भावना

रावण को हराकर रामचंद्रजी सीता सहित अयोध्या आ गये। गर्भ के भार से माता सीता दुर्बल शरीरवाली हो गयी थी पर उनका मुख का तेज बढ गया था। रामजी के पूछने पर सम्मेदशिखरादि तीर्थों की यात्रा करने की मनीषा सीता ने व्यक्त की। इसी दौरान प्रजा के लोग रामजी से मिलने आ गये। आने का कारण पूछने पर लोगों ने बताया की घर-घर में यही एक अपवाद कथा चल रही है कि रावण सीता को हरण करके ले गया फिर भी राम उन्हें घर ले आये। तब फिर और लोगों को ऐसा करने में क्या दोष है। यह सुनकर रामचंद्रजी दुखी हो गये।

तब लक्ष्मण के बहुत समझाने पर भी सीता को त्यागने के अपने निर्णय पर रामचंद्रजी दृढ रहे। उन्होंने सेनापति कृतांतवक्र को बुलाकर सम्मेदशिखरादि तीर्थों की यात्रा करवा के सीता को सिंहनाद वन में छोड आने की आज्ञा दी। तीर्थों की यात्रा करवा के जब सीताजी का रथ सिंहनाद वन में पहुँचा तब रथ रोककर कृतांतवक्र रोने लगे। सीताजी के बहुत समझाने पर कृतांतवक्र ने सारी बात बताई और खुद को धिक्कारते हुए कहा मेरे समान निर्दयी और कौन होगा। मैं पराधीन हूँ इसलिए जो स्वामी ने कहा वही मुझे करना पडा। आज यह पापकर्म कर रहा हूँ। सीता ने कहा मेरी वजह से आप दुखी नहीं होना। मेरे ही अशुभ कर्म के उदय के कारण यह आपत्ति आयी है। उन्होंने कहा मुझे मेरा वीतरागी धर्म और धर्म प्रभावना का चिंतवन ही सहायक है।

कुछ समय बाद लक्ष्मण के साथ विभीषण, सुग्रीव, हनुमान सभी ने रामजी को कहा कि वे जानकी सीता को अयोध्या ले आये। फिर भी लोकापवाद के कारण सीता को नहीं बुला पाये। रामचंद्रजी ने वहाँ बोला की सीता परीक्षा देकर शुद्ध होकर घर में प्रवेश कर सकती है। सीता ने कहा, “हे नाथ आप कहे तो में अवश्य अग्निज्वाला में प्रवेश करुंगी।” रामचंद्रजी ने अग्निकुंड में प्रवेश करने की आज्ञा दी।

सीता ने कहा हे अग्निदेवता! अगर मैंने रामजी के सिवाय किसी अन्य पुरुष का चिंतन भी किया हो तो मुझे जलाकर भस्मसात कर दे। सीता ने धर्म भावना का चिंतवन करके और णमोकार मंत्र के उच्चारण के साथ अग्निकुंड में प्रवेश किया। शील और धर्म के प्रभाव से देवों ने आकर सीता की सहायता की। अग्निकुंड कमलयुक्त सरोवर बन गया। उसके बीचोंबीच सिंहासन रचाकर देवांगनाओं ने आकर सीता को सिंहासन पर बिराजमान किया। चारों ओर से सीता की और धर्मभावना का जयजयकार हुआ।

“धर्मो रक्षति रक्षितो” इस सिद्धान्त को सिद्ध करनेवाली धर्ममूर्ति माता सीता को शत शत प्रणाम।।

चित्रकार परिचय

ऋषीकेश देशमाने

ऋषीकेश देशमाने का जन्म 1983 में महाराष्ट्र के कराड में हुआ। कला प्रशिक्षण मुंबई में स्थित सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स में पुरा हुआ, जहाँ बी.एफ.ए. और एम.एफ.ए. आदि पदवी उन्होंने हासिल की और बाद में सर जे. जे. इन्स्टिट्युट ऑफ एप्लाईड आर्ट में प्रशिक्षक पद का कार्यभार संभाला।

कुछ महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ –

ऋषीकेश कई सारे ग्रुप शोज्स का हिस्सा रहे। उनमें से 2017 में 'डिस्टंट मिरर्स' स्विट्जरलेंड 2017 'प्रत्यागती' स्विस आर्टिस्ट रेसिडेन्सी ग्रुप शो, 2012 'लुकिंग फॉर लेस' सोलो शो स्विट्जरलेंड, 2009 बुरलँड आर्ट गैलरी लंडन, 2008 'बोधी आर्ट ॲवार्ड' शोज्स, बोधी आर्ट गॅलरी, मुंबई, 2007 'हओशीनरिसॉर्ट' आर्ट शो जर्मनी प्रमुख है।

कुछ पुरस्कार और सम्मान –

2015-2016 'रोटरी व्हॅकेशनल एक्सलेन्स ॲवार्ड', 2012 रेसिडेन्सी फेलोशिप ऑफ 'फुतुर' फाऊंडेशन स्विट्जरलेंड, 2008 'राजा रवि वर्मा ॲवार्ड' आर्ट सोसायटी ऑफ इंडिया, 2007 'नॅशनल स्कॉलरशिप' भारत सरकार मिनिस्ट्री ऑफ कल्चर, 2006 'स्टेट ॲवार्ड' स्टेट आर्ट एक्झिबीशन, 2004-2005 'ब्रॉन्झ' और 'सिल्व्हर मेडल', सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट, मुंबई। इनका निवास स्थान और कलाक्षेत्र मुंबई में स्थित है।

चित्रकार की अनुभूति –

'समयसार दृष्टांतवैभव' तथा 'बारह भावना' के चित्रांकन द्वारा मुझे आत्मा की यात्रा का दृष्यभाषांकन करने का अवसर मिला।

www.gurukahanmuseum.org | info@gurukahanmuseum.org

GURU KAHAN ART MUSEUM

Shree Kundkund-Kahan Parmarthik Trust
302, Krishna Kunj, V. L. Mehta Marg, Vile Parle (West), Mumbai - 400 056. INDIA.
Tel. No: +91 22 2613 0820 / 2610 4912
info@vitragvani.com www.vitragvani.com /vitragvanee /c/vitragvanii

Museum Address:
Guru Kahan Art Museum Songadh - 364 250. Gujarat. INDIA.
info@gurukahanmuseum.org www.gurukahanmuseum.org
/gurukahanmuseum +91 88520 88726

9 789381 057506

www.facebook.com/gurukahanmuseum

बारह भावना

9 789381 057506